* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

उमा-इन्द्र-संवाद
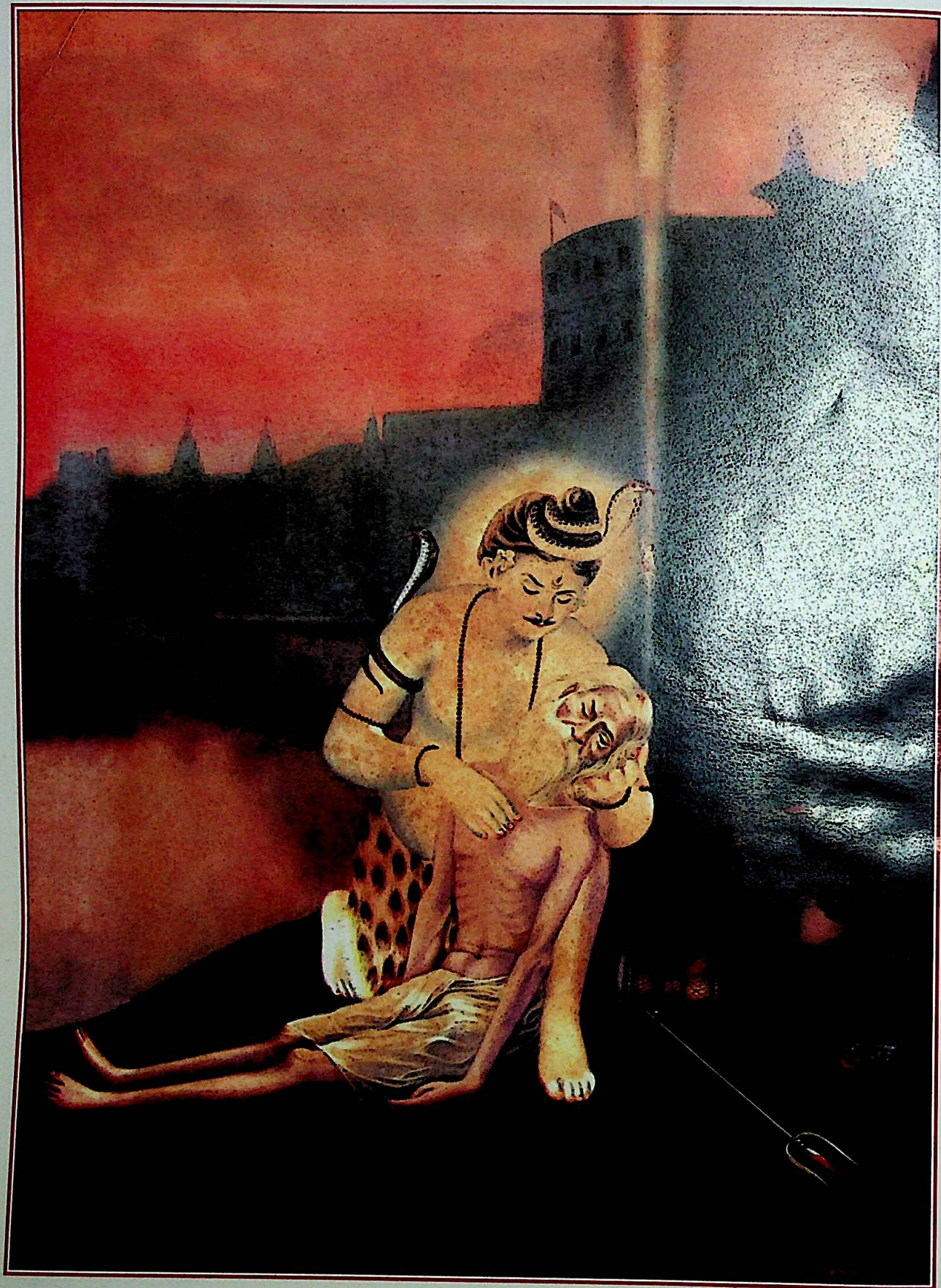
काशीमुक्ति

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम्।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम्॥

वर्ष ९२

गोरखपुर, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०७४, श्रीकृष्ण-सं० ५२४३, फरवरी २०१८ ई०

संख्या २

पूर्ण संख्या १०९५

काशीमुक्ति

रामेण सदृशो देवो न भूतो न भविष्यति॥×××
अतएव रामनाम काश्यां विश्वेश्वरः सदा। स्वयं जप्त्वोपदिशति जन्तूनां मुक्तिहेतवे॥
संसारार्णवसंमग्नं नरं यस्तारयेन्मनुः। स एव तारकस्त्वत्र राममन्त्रः प्रकथ्यते॥
×××अन्तकाले नृणां रामस्मरणं च मुहुर्मुहुः॥
इति कुर्वन्त्युपदेशं मानवा मुक्तिहेतवे। अन्यच्चापि शववाहैः सदा लोकैर्मुहुर्मुहुः॥
रामनामैव मुक्त्यर्थं शवस्य पथि कीर्त्यते। रामनाम्नः परो मन्त्रो न भूतो न भविष्यति॥

रामचन्द्रजीके समान न कोई देवता हुआ है और न होगा ही।××× इसीलिये काशीमें विश्वनाथ भगवान् शंकर निरन्तर 'राम'नामका स्वयं जप करते हैं और प्राणियोंकी मुक्तिके लिये उन्हें राममन्त्रका उपदेश दिया करते हैं। संसाररूपी समुद्रमें डूबे हुए मनुष्यको जो मन्त्र तार देता है, वही तारकमन्त्र राममन्त्र कहलाता है।××× मनुष्योंकी मुक्तिके लिये लोगोंके द्वारा अन्तिम समयमें उनसे बार-बार यही कहा जाता है कि रामका स्मरण करो, रामका स्मरण करो। इसी प्रकार शव-वहन करनेवाले लोगोंके द्वारा मृतप्राणीकी मुक्तिके लिये शवयात्रामें बार-बार रामनामका ही उच्चारण किया जाता है। रामनामसे श्रेष्ठ कोई मन्त्र न आजतक हुआ है और न होगा ही। [आनन्दरामायण]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०७४, श्रीकृष्ण-सं० ५२४३, फरवरी २०१८ ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹ २५०

पंचवर्षीय शुल्क ₹ १२५०

विदेशमें Air Mail शुल्क — वार्षिक US$ 50 (₹3000), पंचवर्षीय US$ 250 (₹15000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : gitapress.org | e-mail : kalyan@gitapress.org | 09235400242/244

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।
Online सदस्यता-शुल्क -भुगतानहेतु-gitapress.org पर Online Magazine Subscription option को click करें।
अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—सच्चे संत भगवत्स्वरूप ही होते हैं। भगवान्‌की भाँति संत भी स्वभावसे सबके सुहृद् हैं, सब उन्हींमें हैं, वे सबमें हैं, सबके हैं और सबसे पृथक् भी हैं। यह सब इसीलिये कि वे भगवान्‌को प्राप्त हैं।

याद रखो—सच्चे संत विश्वके आधार हैं, विश्वके आराध्य हैं, विश्वरूप हैं, विश्वकी रक्षा हैं और विश्वकी शोभा हैं। वे धर्मस्वरूप हैं, धर्ममय हैं और धर्मकी रक्षा हैं। उनके द्वारा स्वभावसे ही ऐसी क्रियाएँ होती हैं, जिनसे विश्व तथा धर्मकी रक्षा होती रहती है। इतनेपर भी वे विश्वसे सदा परे होते हैं।

याद रखो—संतमें अहंकार लेश भी नहीं होता, इसीसे वे अपने पुरुषार्थसे भगवत्प्राप्तिका दावा नहीं करते। वे भगवत्-प्राप्तिमें भगवत्कृपाको ही मुख्य मानते हैं। उनका पुरुषार्थ वस्तुतः भगवत्कृपासे ही संचालित और उससे अभिन्न होता है।

याद रखो—संत भगवान्‌की ही भाँति दयाके समुद्र होते हैं, वे स्वभावसे ही सबके सुहृद् होते हैं। उनकी दयामें न कायरता होती है, न ममता; न स्वार्थ होता है, न भय; न कामना होती है, न अभिमान। जैसे सूर्य स्वभावसे ही विश्वको प्रकाश देता है, वैसे ही संत विश्वके प्राणियोंपर दया करते हैं। पर संत बड़े दूरदर्शी या सर्वदर्शी होते हैं। अतः उनकी दया भी परिणामके यथार्थ हितको ही देखती है। इसलिये संत अत्यन्त मृदुस्वभाव तथा नित्य दयासे द्रवित रहनेपर भी कहीं-कहीं बड़े कठोर-से प्रतीत होते हैं।

याद रखो—संत सर्वथा समभावापन्न, समतामय, मूर्तिमान् समत्व ही होते हैं। वे किसीमें कुछ भी आसक्ति न रखते हुए भी सबके प्रति निश्छल प्रेम करते हैं। साधारण मनुष्यको शरीरके चाहे किसी भी अंगमें कोई सुख-दुःख हो, जैसे उसकी समान-रूपसे अनुभूति होती है; क्योंकि उसकी समस्त शरीरमें अहंकार और ममतायुक्त समता होती है। वैसे ही संतकी समस्त जीव-समूहोंमें अहंकार और ममतासे रहित स्वभाविक समता होती है। वे दूसरे समस्त जीवोंके सुख-दुःखमें सुखी-दुखी-से होकर प्राणोंकी बलि देकर भी उनके दुःखोंको दूर करते और सुखोंको बढ़ाते हैं। विषयी लोग जहाँ अपने भ्रमात्मक स्वार्थके लिये दूसरेका चाहे जैसा अहित करनेमें भी नहीं सकुचाते, ठीक इसके विपरीत वे संतजन दूसरोंके यथार्थ हितके लिये हँसते-हँसते अपने शरीर तथा जगत्‌के माने हुए सर्वस्वको न्योछावर कर देते हैं। पर अपने ऊपर आये हुए सुख-दुःखकी ओर वे दृष्टिपात ही नहीं करते। उनके ऐसे व्यवहारमें विषमता दीखनेपर भी उनके अन्दर नित्य निर्दोष समता रहती है। न तो उन्हें कोई बड़े-से-बड़ा सुख ही विचलित कर सकता है और न भयानक-से-भयानक दारुण दुःख ही।

याद रखो—मान-अपमान, स्तुति-निन्दा और लाभ-हानि—सभी द्वन्द्वोंमें संत सम रहते हैं। वे मान, स्तुति तथा लाभमें हर्षसे फूलते नहीं और अपमान, निन्दा तथा हानिमें विषादसे अपने स्वरूपको भूलते नहीं। पर यथायोग्य व्यवहार करनेमें सकुचाते भी नहीं। न तो वे मान, स्तुति और लाभको स्वीकार करनेमें डरते हैं और न अपमान, निन्दा और हानिका प्रतिकार करनेमें ही स्वरूपकी हानि समझते हैं। ऐसा करते हुए भी वे इनसे सदा परे, निर्लिप्त तथा नित्य निर्विकार रहते हैं।

याद रखो—संत स्वभावसे ही क्षमा, प्रेम, सन्तोष, कल्याण, करुणा और सदाचारकी मूर्ति होते हैं, वे सदा सन्तापहीन, आनन्दमय तथा शान्तिके भण्डार होते हैं और अपने स्वाभाविक आचरणोंके द्वारा जगत्‌के प्राणियोंका सन्ताप हरते हुए उनमें क्षमा, प्रेम, सन्तोष, कल्याण, करुणा, सदाचार, आनन्द और शान्तिका प्रचार, प्रसार और विस्तार करते रहते हैं।

याद रखो—संतोंके लिये कुछ भी कर्तव्य या विधि-निषेध न होनेपर भी वे बड़े कर्तव्यपरायण और विधिका अनुसरण करनेवाले होते हैं। उनमें बसी हुई लोककल्याणकारिणी वृत्ति उनके द्वारा निरन्तर ऐसे कार्य करवाती है, जिससे जगत्‌का कल्याण हो। वे वृत्तियोंसे परे एवं नित्य स्वरूपस्थित रहते हुए ही सावधान साधककी भाँति सदा शुभ आचरण करते हैं। ग्रहण-त्यागकी परिधिसे परे एवं होते हुए भी शुभका ग्रहण और अशुभका त्याग करते हैं। इसीलिये उनका जीवन अन्य लोगोंके लिये आदर्श होता है।

याद रखो—सभी सच्चे संत अन्दरसे वस्तुतः ऐसे होनेपर भी सबके बाहरी आचरण ऐसे ही हों—एक-से ही हों, यह आवश्यक नहीं है। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

इन्द्रदर्पहारिणी भगवती उमा

एक समयकी बात है, मदाभिमानी दैत्यों और देवताओंके बीच भयंकर युद्ध हुआ। यह विस्मयकारक युद्ध लगातार सौ वर्षोंतक चलता रहा। उस समय देवताओंपर भगवती आदिशक्ति कृपालु थीं, अतः उनकी इस महासंग्राममें विजय हुई। दानव पराजित होकर पृथ्वी और स्वर्गको छोड़कर पाताललोकमें चले गये। दैत्योंके पराजित हो जानेपर देवता विजयके मदमें चूर होकर सर्वत्र अपने पराक्रमका बखान करने लगे।

देवताओंके अहंकारको नष्ट करनेके लिये भगवती आदिशक्ति उमा उनके समक्ष यक्षके रूपमें प्रकट हुईं। उनका विग्रह करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान था। देवराज इन्द्रने अग्निको उस तेजस्वी यक्षका परिचय जाननेके लिये भेजा। अग्निदेव इन्द्रके आदेशसे यक्षके पास पहुँचे। यक्षने अग्निसे कहा—'मेरा परिचय जाननेके पूर्व तुम अपना परिचय देनेकी कृपा करो।' इसपर अग्निने कहा—'मैं जातवेदा अग्निदेव हूँ। अखिल विश्वको जला डालनेकी मुझमें शक्ति है।'

अग्निके इस प्रकार कहनेपर यक्षने उनके सामने एक तृण रख दिया और कहा—'यदि विश्वको जला डालनेकी तुममें शक्ति है तो पहले इस तृणको जलाकर दिखाओ।' अग्निदेवने उस तृणको भस्म करनेके लिये अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी, किंतु उसे भस्म न कर सके। अन्तमें लज्जित होकर वे इन्द्रके पास लौट गये और उनसे वहाँका सारा समाचार बताया। तदनन्तर देवराज इन्द्रने वायुको बुलाया और कहा—'वायुदेव! तुमसे यह सारा जगत् ओतप्रोत है। तुम ही प्राणरूप होकर अखिल प्राणियोंका संचालन करते हो। अतः अब तुम ही जाकर इस यक्षका पता लगाओ।'

इन्द्रको अपनी प्रशंसा करते देखकर वायुदेव अभिमानसे भर गये। वे तुरंत यक्षके सन्निकट गये। उन्होंने यक्षसे कहा—'मैं मातरिश्वा वायुदेव हूँ। मेरी चेष्टासे ही जगत्के सम्पूर्ण व्यापार चलते हैं।' यक्षने उनसे भी एक तृणको उड़ानेके लिये कहा, पर वायुदेव अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगानेके बाद भी उस तृणको हिला न सके तथा लज्जित होकर इन्द्रके पास लौट आये।

तब सम्पूर्ण देवताओंने इन्द्रसे कहा—'देवराज! आप हमलोगोंके स्वामी हैं, अतः यक्षके सम्बन्धमें पूरी जानकारी प्राप्त करनेके लिये अब आप ही प्रयत्न करें।' अन्तमें देवराज इन्द्र अभिमानसे यक्षके सन्निकट गये, किंतु तेजस्वी यक्ष उसी क्षण अन्तर्धान हो गया। देवराज इन्द्र इस घटनाको देखकर लज्जासे डूब गये। उनका अभिमान नष्ट हो गया। तदनन्तर भगवती उमाने उन्हें दर्शन दिया। तब इन्द्रने करुण स्वरमें भगवतीकी नाना प्रकारसे स्तुति की और यक्षका परिचय बतानेकी प्रार्थना की। भगवतीने इन्द्रसे कहा—'देवराज! मेरी ही शक्तिसे तुमलोगोंने दैत्योंपर विजय प्राप्त की है। अभिमानवश तुम्हारी बुद्धि अहंकारसे आवृत हो गयी थी। अतः तुमपर अनुग्रह करनेके लिये मेरा ही अनुत्तम तेज यक्षरूपमें प्रकट हुआ था। वस्तुतः वह मेरा ही रूप था। तुमलोग अभिमान त्याग करके मुझ सच्चिदानन्दस्वरूपिणी देवीके शरणागत हो जाओ।' इस प्रकार इन्द्रको शिक्षा देकर तथा देवताओंके द्वारा सुपूजित होकर वे भगवती आदिशक्ति उमा वहीं अन्तर्धान हो गयीं। [शिवपुराण]

भगवान्की प्राप्तिके कुछ सरल और निश्चित उपाय

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

आस्तिकभाव या भगवान्की सत्तामें विश्वास

भगवान्के स्वरूपका ज्ञान न होनेपर भी भगवान्की सत्तामें (होनेपनमें) जो विश्वास है, उससे भी परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है; किंतु यह विश्वास पूर्णरूपसे होना चाहिये। मनुष्यके मनमें भगवान्के अस्तित्वका विश्वास ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है, त्यों-ही-त्यों वह भगवान्के समीप पहुँचता जाता है। किसीको भगवान्के सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार किसी भी स्वरूपका वास्तविक अनुभव नहीं है; किंतु यह विश्वास है कि भगवान् हैं और वे सब जगह व्यापक हैं; वे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, परम प्रेमी और परम दयालु हैं, वे पतितपावन और अन्तर्यामी हैं। हम जो कुछ कर रहे हैं, उसे भगवान् देख रहे हैं, जो कुछ बोल रहे हैं, उसे वे सुन रहे हैं तथा जो कुछ हमारे हृदयमें है, उसे भी वे जान रहे हैं। इस प्रकार विश्वास हो जानेपर उस साधकके द्वारा झूठ, कपट, चोरी, बेईमानी, हिंसा, व्यभिचार आदि भगवान्के विपरीत आचरण नहीं हो सकते। इस विश्वासकी उत्तरोत्तर वृद्धि होनेपर विरुद्ध आचरणकी तो बात ही क्या है, उसके द्वारा यज्ञ, दान, तप, तीर्थ, व्रत, उपवास, सेवा, जप, ध्यान, पूजा, पाठ, स्तुति, प्रार्थना, सत्संग, स्वाध्याय आदि जो कुछ सत्-चेष्टा होगी, वह भगवान्के अनुकूल और उनकी प्रसन्नताके लिये ही होगी। उसके हृदयमें क्षमा, दया, शान्ति, समता, सरलता, संतोष, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि भाव भगवान्के अनुकूल और उत्तम-से-उत्तम होंगे। भगवान्के अस्तित्वमें जो भक्तिपूर्वक विश्वास है, इसीका नाम 'श्रद्धा' है। भगवान्के गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्यको समझनेसे जब साधककी भगवान्में परम श्रद्धा हो जाती है तब उसके हृदयमें प्रसन्नता और शान्ति उत्तरोत्तर बढ़ते चले जाते हैं। कभी-कभी तो शरीरमें रोमांच और नेत्रोंसे अश्रुपात होने लगते हैं तथा हृदय प्रफुल्लित हो जाता है। कभी-कभी विरहकी व्याकुलतामें वह अधीर-सा हो जाता है। उसके हृदयमें यह भाव आता है कि जब भगवान् हैं तो हम उनसे वंचित क्यों? भगवान्की ओरसे तो कोई कमी है ही नहीं, जो कुछ विलम्ब होता है, वह हमारे साधनकी कमीके कारण ही होता है और उस साधनकी कमीमें हेतु है विश्वासकी कमी तथा विश्वासकी कमीमें हेतु है अज्ञता यानी मूर्खता।

अतएव हमको यह विश्वास बढ़ाना चाहिये कि भगवान् निश्चय हैं, वे अबतक बहुतोंको मिल चुके हैं, वर्तमानमें मिलते हैं एवं मनुष्यमात्रका उनकी प्राप्तिमें अधिकार है। अपात्र होनेपर भी दयामय भगवान्ने मुझको मनुष्य-शरीर देकर अपनी प्राप्तिका अधिकार दिया है। ऐसे अधिकारको पाकर मैं भगवान्की प्राप्तिसे वंचित रहूँ तो यह मेरे लिये बहुत ही लज्जा और दुःखकी बात है। बार-बार इस प्रकार सोचने-समझनेपर भगवान्के होनेपनमें उत्तरोत्तर भक्तिपूर्वक विश्वास बढ़ता चला जाता है, जिससे उसके मनमें भगवान्को प्राप्त करनेकी आकांक्षाका उदय हो जाता है, तदनन्तर आकांक्षामें तीव्रता आते-आते उसको भगवान्का न मिलना असह्य हो जाता है, अतएव वह फिर भगवान्की प्राप्तिसे वंचित नहीं रहता। तीव्र इच्छा उत्पन्न होनेपर भगवान् उससे मिले बिना रह नहीं सकते। जो भगवान्से मिलनेके लिये अत्यन्त आतुर हो जाता है, उसके लिये एक क्षणका भी विलम्ब भगवान् कैसे कर सकते हैं? अतएव भगवान्के अस्तित्वमें विश्वास उत्तरोत्तर तीव्रताके साथ बढ़ाना चाहिये। इस भक्तिपूर्वक विश्वासकी पूर्णता ही परम श्रद्धा है। परम श्रद्धाके उदय होनेके साथ ही भगवान्की प्राप्ति हो जाती है, फिर एक क्षणका भी विलम्ब नहीं हो सकता। हमारे श्रद्धा-विश्वासकी कमी ही भगवान्की प्राप्तिमें विलम्ब होनेका एकमात्र कारण है।

शास्त्र और महात्माओंपर श्रद्धा

शास्त्र और महात्माओंपर विश्वास होनेपर भी परमात्माकी प्राप्ति शीघ्रातिशीघ्र हो सकती है। शास्त्र कहते हैं कि 'भगवान् हैं' और महात्मा भी कहते हैं कि 'भगवान् हैं।' शास्त्रके वचनोंसे भी महात्माके वचन

विशेष बलवान् हैं; क्योंकि महात्मा तो साक्षात् परमात्माका दर्शन करके ही कहते हैं कि 'भगवान् हैं' और महात्मा कभी झूठ कहते नहीं। जो झूठ बोलते हैं, वे तो महात्मा ही नहीं। यदि महात्मा यह कहते हैं कि 'भगवान् हैं और इस विषयमें शास्त्र प्रमाण है' तो इस प्रकारका महात्माका वचन तो शास्त्रके समान ही है, किंतु शास्त्रका प्रमाण न देकर यदि महापुरुष कहें कि 'भगवान् निश्चय हैं' तो यह वचन और भी बलवान् है, शास्त्रके प्रमाणसे भी बढ़कर है; क्योंकि बिना प्रत्यक्ष किये महात्मा ऐसा नहीं कहते।

अतएव महात्माके मनके अनुसार चलनेवालेका कल्याण हो जाय, इसमें तो कहना ही क्या है, उनके संकेत (इशारे) और आदेशके अनुसार आचरण करनेपर भी निश्चय ही परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। जबकि शास्त्रके अनुकूल चलनेसे भी कल्याण हो जाता है तो फिर महापुरुषोंके बतलाये हुए मार्गके अनुसार चलनेसे या उनका अनुकरण करनेसे कल्याण हो जाय, इसमें तो कहना ही क्या है, किंतु महात्माके वचनोंमें परम श्रद्धा होनी चाहिये। मान लीजिये, किसी महात्माने किसी श्रद्धा दिखानेवाले पुरुषसे कहा कि 'अमुक संस्थामें एक बोरा गेहूँ और दस कम्बल भिजवा दो।' इसपर उस श्रद्धालुने अपनी बुद्धि लगाकर उत्तर दिया कि 'इस समय न तो कम्बलका मौसम है, न उनकी माँग है और न आवश्यकता ही है।' तब महात्मा बोले—'अच्छी बात है, गेहूँ ही भिजवा दो।' श्रद्धालुने कहा—'अभी यहाँ गेहूँके दाम महँगे हैं, पाँच दिनों बाद दाम कम हो जायँगे; दूसरे प्रदेशोंमें बाजार गिर गया है और यहाँ भी गिरनेवाला है; अतएव भाव गिरनेपर भेज देंगे।' इसपर महात्माने कहा—'बहुत अच्छा। तुम ठीक समझो, तभी भिजवा सकते हो।' इसका नाम 'श्रद्धा' नहीं है; क्योंकि यहाँ वह श्रद्धालु महात्माके आदेशका श्रद्धापूर्वक ज्यों-का-त्यों पालन न करके अपनी बुद्धिसे काम लेता है और महात्मा अपनी सहज समतासे उसमें सहमत हो जाते हैं। ऐसी परिस्थितिमें श्रद्धालुकी जो श्रद्धा होती है, उस श्रद्धाका कोई मूल्य नहीं; तथा महात्माकी आज्ञा यदि श्रद्धालुके अनुकूल पड़ती है और श्रद्धालु उसे मान लेता है, यह भी श्रद्धा नहीं है एवं महात्माकी आज्ञा श्रद्धालुके मनके विपरीत प्रतीत हो, परंतु वह मन मारकर उसे मान ले तो यह भी श्रद्धा नहीं है। मनके विपरीत होनेपर भी महात्माकी आज्ञाको श्रद्धालु प्रसन्नतासे पालन करता है, जैसे राजा युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयोंने द्रौपदीके साथ विवाह करनेके विषयमें माता कुन्तीके वचनका शास्त्रके अनुकूल न होनेपर भी प्रसन्नता और आग्रहके साथ अनुसरण किया था—इसका नाम 'श्रद्धा' है।

वाल्मीकीय रामायणके अयोध्याकाण्डमें लिखा है कि वनगमनके समय भगवान् श्रीरामचन्द्रजी महाराज माता कौसल्याके पास गये और उन्होंने पिताकी आज्ञासे वनमें जानेकी बात कही। तब माता कौसल्याने कहा—'पिताकी आज्ञा वनमें जानेकी है किंतु मेरी आज्ञा है, तुम वनमें मत जाओ।' यह सुनकर भगवान् रामने कहा—'पिताकी आज्ञाका उल्लंघन करनेकी मुझमें सामर्थ्य नहीं है। अतः मैं आपकी अनुमति लेकर वन जाना चाहता हूँ।' भगवान् रामकी दशरथजीमें जो यह श्रद्धा है, यह 'परम श्रद्धा' है।

आयोदधौम्य मुनिने एक दिन अपने शिष्य आरुणिसे कहा—'तुम खेतमें जाकर नीचे बहे जानेवाले जलको रोक दो।' उसने वहाँ जाकर उस जलको मिट्टीसे रोकनेकी बहुत चेष्टा की, किंतु उसे सफलता नहीं हुई। वह मिट्टीकी मेंड़ बनाता और जलका प्रबल प्रवाह उसे बहा देता। जब प्रवाह रुका ही नहीं, तब आरुणि स्वयं वहाँ लेट गया, जिससे जलका बहना बन्द हो गया। तदनन्तर कुछ समय बीतनेपर गुरुजीने शिष्योंसे पूछा—'आरुणि कहाँ गया?' उन्होंने कहा—'आपने ही तो खेतका पानी रोकनेके लिये उसे भेजा है।' यह सुनकर आयोदधौम्य मुनि बोले—'अभीतक आरुणि लौटकर नहीं आया, अतः चलो, हम सब भी वहीं चलें।' तदनन्तर वे उसी समय शिष्योंको साथ लेकर वहाँ पहुँचे, जहाँ आरुणि स्वयं मेंड़ बनकर जलको रोके हुए था। मुनिने कहा—'वत्स आरुणि! तुम कहाँ हो, यहाँ आओ।' यह सुनकर आरुणि उठकर गुरुके पास आया और हाथ जोड़कर कहने लगा—'आपकी आज्ञासे मैंने जल रोकनेका प्रयत्न किया, किंतु जब जल न रुका तो

मैंने स्वयं ही लेटकर जलको रोक रखा था। आपके वचन सुनकर अब मैं वहाँसे उठकर आ गया हूँ और आपको प्रणाम करता हूँ, अब आपकी क्या आज्ञा है? जलको रोके रखूँ या दूसरा कोई कार्य करूँ?' गुरुजीने कहा—'तुम बाँधका उद्दलन करके निकले हो, अतः तुम 'उद्दालक' नामसे प्रसिद्ध होओगे।' फिर आचार्यने कृपापूर्वक कहा—'तुमने मेरे वचनोंका पालन किया है, इसलिये तुम कल्याणको प्राप्त होओगे और सम्पूर्ण वेद तथा समस्त धर्मशास्त्र तुम्हारे लिये स्वतः ही प्रकाशित हो जायँगे।' गुरुजीका वरदान पाकर आरुणि अपने देशको लौट गये। श्रद्धाके प्रभावसे उन्हें बिना ही पढ़े सारे वेदोंका ज्ञान हो गया।

श्रीहारिद्रुमत गौतम नामके एक ऋषि थे। उनके पास जबालाका पुत्र सत्यकाम गया और बोला—'मुझे ब्रह्मका उपदेश दीजिये।' गौतमने पूछा—'तुम्हारा गोत्र क्या है?' उसने उत्तर दिया—'मैंने अपनी माँसे पूछा था तो माँने कहा कि 'मैं तुम्हारे पिताकी सेवा किया करती थी, गोत्रका मुझे ज्ञान नहीं है। तेरा नाम सत्यकाम है और मेरा नाम जबाला है।' यह सुनकर गौतम बड़े प्रसन्न हुए और बोले—'तुम ब्राह्मण हो; क्योंकि तुम सत्य बोल रहे हो। आजसे तुम्हारी माँके नामसे तुम्हारा गोत्र होगा।' तत्पश्चात् उसे शिष्य स्वीकार करके गौतमने कहा—'तुम समिधा ले आओ, मैं तुम्हारा उपनयन कर दूँगा।' फिर उन्होंने चार सौ गायें अलग करके कहा—'तुम इनके पीछे-पीछे जाओ।' तब उन्हें ले जाते समय सत्यकाम बोला—'इनकी एक हजार गायें हुए बिना मैं नहीं लौटूँगा।' इस प्रकार कहकर वह वनमें चला गया और वहीं वर्षोंतक रहा। जब वे एक हजारकी संख्यामें हो गयीं तो एक बैलने कहा—'अब हमारी संख्या एक हजार पूरी हो गयी, तुम हमें गुरुके पास ले चलो।' वह गायोंको लेकर गुरुके समीप पहुँचनेके लिये चला। वहीं रास्तेमें उसको साँड़के द्वारा ब्रह्मके प्रथम पादका, अग्निके द्वारा द्वितीय पादका, हंसके द्वारा तृतीय पादका और मद्गु (जलकुक्कुट)-के द्वारा चतुर्थ पादका उपदेश प्राप्त हो गया। इस प्रकार अनायास ब्रह्मका उपदेश प्राप्तकर वह ब्रह्मज्ञानी हो गया। जब वह गायोंको लेकर गुरुके पास पहुँचा तो उसके चेहरेकी चमक और शान्तिको देखकर गौतमने कहा—'सत्यकाम! तुम्हारा चेहरा देखनेसे प्रतीत होता है, मानो तुम्हें ब्रह्मका ज्ञान हो गया है।' सत्यकाम बोला—'ठीक है। किंतु फिर भी मैं आपके मुखसे सुनना चाहता हूँ।' तब गुरुने भी उसे उपदेश दिया। यह है उच्चकोटिकी श्रद्धा।

अपने मनके विपरीत भी गुरुके आदेशको प्रसन्नताके साथ काममें लाया जाता है, यह श्रद्धा और अपने मनके अत्यन्त विपरीत आदेश सुनकर भी उसके अनुसार करनेमें अतिशय प्रसन्नता हो अर्थात् इधर गुरुकी आज्ञाकी विपरीतताकी भी कोई सीमा नहीं और उधर उसका पालन करनेमें प्रसन्नताकी भी कोई सीमा नहीं। तात्पर्य यह कि विपरीत-से-विपरीत आज्ञाके पालनके समय प्रसन्नता, शान्ति आदि उत्तरोत्तर इतनी अधिक बढ़ती जाती है कि हृदयमें हर्ष, प्रफुल्लता और शरीरमें रोमांच, अश्रुपात आदिकी सीमा नहीं रहती, बल्कि वे अनवरत बढ़ते ही जाते हैं। यह है परम श्रद्धा।

उपर्युक्त भावसे भावित हो प्रभुके मनके, संकेतके या आज्ञाके अनुसार करनेवालेका शीघ्रातिशीघ्र कल्याण हो जाता है, इसमें कोई शंकाकी बात नहीं।

इसी प्रकार शास्त्रकी आज्ञाके पालनके विषयमें भी ऐसा भाव हो तो उसे शास्त्रमें परम श्रद्धा समझना चाहिये।

ईश्वरके मिलनेकी तीव्र इच्छा

एक भाई दुर्गुण और दुराचारसे युक्त है, किंतु ईश्वरके मिलनेकी महिमाको सुनकर उसके मनमें ईश्वरसे मिलनेकी तीव्र इच्छा जाग उठी; ऐसी परिस्थितिमें भगवान् उसके दुर्गुण और दुराचारोंकी ओर ध्यान न देकर उसे अविलम्ब दर्शन दे सकते हैं। कोई दो-तीन सालका छोटा बालक मल-मूत्रसे भरा है और माताके लिये अत्यन्त व्याकुल है। स्नेहमयी माता अपने उस हृदयके टुकड़ेको जलसे शुद्ध करके हृदयसे लगाना चाहती है, किंतु बालक इतना आतुर है कि विलम्ब सहन नहीं कर सकता। उसे इस बातका ज्ञान ही नहीं है कि मल-मूत्रसे लथपथ होनेके कारण मुझको माँ हृदयसे लगानेमें विलम्ब कर रही है, वह तो मातासे मिलनेके लिये अतिशय करुणाभावसे

व्याकुल हो फूट-फूटकर रोता है। ऐसी परिस्थितिमें माता उसकी अतिशय व्याकुलताको देखकर स्नेहके कारण उसे हृदयसे लगा लेती है। पर भगवान्‌का स्नेह तो अनन्त माताओंसे बढ़कर है, फिर वे विलम्ब कैसे कर सकते हैं? स्नेहके कारण जब भक्तके हृदयमें प्रभुसे मिलनेकी लालसा अत्यन्त बढ़ जाती है, तब भगवान् उसके दुर्गुण-दुराचाररूप दोषोंकी ओर देखकर भी विलम्ब नहीं करते।

माता तो बच्चेके मल-मूत्रकी सफाई करनेमें विलम्ब भी कर सकती है; किंतु भगवान्‌की दृष्टिमें तो उस साधकके दुर्गुण-दुराचार रह ही नहीं जाते, तब वे कैसे विलम्ब कर सकते हैं? पर साधकके हृदयमें मिलनकी इच्छा अत्यन्त तीव्र होनी चाहिये, फिर वह कैसा भी दुराचारी क्यों न हो? भगवान् तो केवल एक तीव्र प्रेम और मिलनकी तीव्र लालसाको ही देखते हैं और कुछ नहीं।

अतएव हमलोगोंके हृदयमें भगवान्‌से मिलनेकी उत्कट इच्छा और परम प्रेम हो, इसके लिये प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये।

भगवान्‌पर निर्भरता

बिल्लीका बच्चा जैसे अपनी माँपर निर्भर करता है, हमें उससे भी बढ़कर भगवान्‌पर निर्भर होना चाहिये। दो सालका छोटा बालक थोड़ी देरके लिये भी माँको छोड़ना नहीं चाहता, वह माँके ही भरोसे रहता है। माँ चाहे मारे, चाहे पाले। वह माँके सिवा दूसरेको नहीं जानता। वह तो एक माँपर ही पूर्णतया निर्भर है। इसी प्रकार कल्याणकामीको अपने कल्याणके लिये भगवान्‌पर निर्भर होना चाहिये। भगवान् तारें, चाहे मारें। उसमें कुछ भी विचार न करे, केवल भगवान्‌के ही भरोसे रहें। भगवान्‌के विधानके अनुसार सुख-दुःख आदि जो कुछ प्राप्त होते हैं, उनको भगवान्‌का भेजा हुआ पुरस्कार मानकर हर समय प्रसन्न रहना चाहिये और अपनेद्वारा होनेवाले कार्योंमें ऐसा समझना चाहिये कि हमारे सारे कर्म भगवान् जैसे करवाते हैं, वैसे ही होते हैं; किंतु इस विषयमें अकर्मण्यता (कर्म करनेमें जी चुराना) और सकाम कर्म या शास्त्र-विपरीत कर्म यदि होते हों तो यह समझना चाहिये कि हमारे कर्मोंमें भगवान्‌का हाथ नहीं है, कामका हाथ है; किंतु जहाँ भगवान्‌का हाथ है, वहाँ कर्तव्यकर्मकी अवहेलना नहीं हो सकती और कामनाका अभाव होनेके कारण सकाम कर्म भी नहीं होते; तो फिर पापकर्म तो हो ही कैसे सकते हैं। यदि हों तो समझना चाहिये कि वहाँ कामका हाथ है।

गीतामें अर्जुनने पूछा कि—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥

(३। ३६)

'हे कृष्ण! तो फिर यह मनुष्य स्वयं न चाहता हुआ भी बलात्कारसे लगाये हुएकी भाँति किससे प्रेरित होकर पापका आचरण करता है?'

इसके उत्तरमें भगवान्‌ने कहा—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

(३। ३७)

'रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है, यह बहुत खानेवाला अर्थात् भोगोंसे कभी न अघानेवाला और बड़ा पापी है, इसको ही तुम इस विषयमें वैरी जानो।'

'भगवान्‌की निर्भरता'का यह अर्थ नहीं कि वह बालककी भाँति सर्वथा कर्मोंका त्याग कर देता है। बालकको ज्ञान नहीं है, इसलिये उसके लिये कर्तव्य लागू नहीं पड़ता; किंतु जिसको ज्ञान है, वह सर्वथा कर्म छोड़कर बैठे तो वह भगवान्‌की निर्भरता नहीं, वरं प्रमाद है। जो भगवान्‌पर निर्भर हो जाता है, वह चिन्ता, शोक, भय, ईर्ष्या, उद्वेग आदि दुर्गुणोंसे रहित हो जाता है। उसमें धीरता, वीरता, गम्भीरता, निर्भयता, शान्ति, सन्तोष, सरलता आदि गुण स्वयमेव आ जाते हैं।

अतएव परमात्माकी प्राप्तिके लिये परमात्माके शरण होकर नित्य-निरन्तर भगवान्‌के नाम और रूपका स्मरण करते हुए उसपर सर्वथा निर्भर रहना चाहिये। भगवान् जो कुछ करें, उसको उनकी लीला समझकर देखता रहे और उसीमें आनन्द माने।

उनकी क्रीड़ा

(गोलोकवासी संत पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी महाराज)

यो दुर्विमर्शपथया निजमाययेदं सृष्ट्वा गुणान् विभजते तदनुप्रविष्टः।
तस्मै नमो दुरवबोधविहारतन्त्र संसारचक्रगतये परमेश्वराय॥*

यह जगत् प्रभुकी क्रीड़ास्थली है। इसमें वे नाना रूपोंसे नाना भाँतिकी क्रीड़ाएँ करते हैं। सृष्टिके आदिमें जब कुछ नहीं था, तब उन्होंने अपनी कमलके समान बड़ी-बड़ी आँखोंको फाड़कर चारों ओर देखा।

सर्वत्र शान्ति थी, सर्वत्र शून्यका साम्राज्य था, वे सोते-सोते ऊब गये थे। योगनिद्रासे भी उन्हें थकान-सी मालूम पड़ने लगी। अब उन्हें खेलकी इच्छा हुई। स्वतस्तृप्त आत्मारमणको भी इच्छा! यह कैसी विपरीत बात है? यही तो बात है। वे ही अनुकूल, प्रतिकूल सबके जनक हैं। उनके लिये न कोई कर्तव्य न अकर्तव्य। उनके लिये सभी अनुकूल हैं, सभी प्रतिकूल।

देखते-ही-देखते खेलका साज-सामान बनने लगा; क्योंकि क्रीड़ा एकत्वमें नहीं होती। खेलनेके लिये अनेक चाहिये। वह एक-से अनेक हो गया। उसने अपने बहुत-से रूप बना लिये, वही क्रीड़ाका साज-सामान बन गया। उसीने खेलनेवालोंके अनेक रूप धारण कर लिये। बस, खेल शुरू हो गया।

दार्शनिकोंने उसमें अनेक तर्क लगाये। वैज्ञानिकोंने उसमें सूक्ष्मताका अन्वेषण किया। विद्वानोंने उसकी क्रीड़ाके ऊपर अनेकों शास्त्र बनाये। वह हँसता रहा, मुसकराता रहा, कुछ बोला नहीं। उसने इच्छा की, आकाश बन गया। उसमें वायु चलने लगी, प्रकाश हो गया। गरमी लगने लगी, जल बन गया। गीला हो गया, पृथ्वी बन गयी—यही तो क्रीड़ाक्षेत्रोंमें होता है। अजी! पहले प्रकाश क्यों आया? चाँदनी ही पहले क्यों तानी गयी? छिड़काव बादमें क्यों हुआ? इसीपर लोग माथापच्ची करते हैं, करें। खिलाड़ीको ये प्रश्न व्यर्थ-से लगते हैं, उसे इनसे कोई प्रयोजन नहीं।

खेलनेवालेने रखी हुई गेंद स्वाभाविक उठा ली है। अपना दुपट्टा उठाकर ओढ़ लिया, टोपी लगा ली, जूती पहन ली, खेलनेको चल दिया। उसके सब काम स्वाभाविक हैं; किन्तु विवेचना करनेवाले उसीपर तर्क करते हैं। पहले दुपट्टा बायें हाथसे ही क्यों उठाया? टोपी तनिक टेढ़ी क्यों लगायी? लगाकर चार कदम बायीं ओर क्यों चला? बस, ये ही प्रश्न इतने जटिल बन जाते हैं कि लोग इन्हींपर मस्तिष्क खपाते रहते हैं। अरे! यह तो स्वभाव है, क्रीड़ा करनेवालेकी इच्छा है।

इस जगत्को हम भगवान्की क्रीड़ाभूमि और समस्त प्रपंचको उनके खेलका साज-समान मान लें तो न फिर कोई झंझट है, न वाद-विवाद है। भगवान् अनेक तरहसे खेल रहे हैं। उनकी क्रीड़ामें न कोई सम्भव, न असम्भव। आज लोग गर्व करते हैं—हमने इंजन बनाया, तार बनाये, हम यह कर देते हैं, वह कर देते हैं। मैं कहता हूँ—तुम पृथ्वीका एक कण बना सकते हो? जलकी एक बूँद बना सकते हो? विद्युत्की एक किरण तैयार कर सकते हो? वायुका एक श्वास उत्पन्न कर सकते हो? नहीं, तो सब व्यर्थ है। मायामें क्या सम्भव, क्या असम्भव? सभी सम्भव है, सभी असम्भव है।

वे हरि खेल रहे हैं। आदिशक्ति महामायाके साथ वे स्वयं नाचते हैं। महामाया ताली बजाकर उन्हें नचा रही है।

नाचे नँदलाल नचावे वाकी मैया।

वे स्वयं नाचते हैं और चराचर प्रकृतिके साथ क्रीड़ा करते हैं। कभी स्वयं बैठ जाते हैं—सबको नचाते हैं।

उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत रामु गोसाईं॥

नाचना-नचाना, गाना-गवाना—इसीका नाम रास है। यह रास अनादिकालसे हो रहा है, अनन्तकालतक होता रहेगा। इसका न आदि है, न अन्त, न मध्य, न अवसान। चल रहा है, चलता रहा है, चलता रहेगा। हम सब उसीकी प्रेरणासे कर्म कर रहें हैं, क्रीड़ा कर रहे हैं। क्रीड़ा सुखके लिये होती है—आनन्दके लिये होती है। हम रोज प्रत्यक्ष देखते हैं—खेलमें हमें सभी चीजें प्रसन्न करनेके लिये ही होती हैं। विदूषक आकर हँसीकी बातें करता है, हमें प्रसन्नता होती है, हँसते हैं। फिर एक नायिका आकर रोती

* जो अपनी अचिन्त्यगति मायासे इस संसारको रचकर उसमें अनुप्रविष्ट हो जाते हैं तथा कर्म और कर्मफलका विभाग करते हैं। जिनकी अगम्य लीलाएँ, जिनके चित्र-विचित्र खेल, इस संसाररूपी चक्रकी गतिका प्रधान हेतु हैं, उन परमेश्वरको नमस्कार है।

है, तड़फड़ाती है, मूर्तिमयी करुणाका रूप दिखाकर दर्शकोंको रुला देती है। सबकी आँखोंसे आँसू बहने लगते हैं। फिर भी हम आनन्दसे उछल पड़ते हैं, वाह-वाह! बड़ा सुन्दर अभिनय किया। कमाल कर दिया। आज तो बड़ा आनन्द आया। कभी किसीका सिर कटता है, हम ताली बजा देते हैं। किसीपर विपत्ति आती है, हम उत्सुक होकर उसका परिणाम देखने लगते हैं। सारांश यही है कि नाटकमें जो भी हो—सभीमें हमें सुख हैं, सभीमें आनन्द है। दुःख तभी होता है, जब पात्र अपना अभिनय तत्परतासे नहीं करते। इसी तरह यह जगत् तो आनन्दकी जगह है। खेलनेका स्थान है, रंगस्थली है, क्रीड़ाका क्षेत्र है। इसमें जो दुखी होते हैं, चिन्तित होते हैं, व्यग्र बने रहते हैं, उन्होंने अपनेको ही कर्ता मान रखा है, वे स्वयं इस नाटकके दर्शक न बनकर अपनेको सूत्रधार समझे बैठे हैं। अरे! सूत्रधार तो वे ही हरि हैं। वे जो भी कुछ करते हैं, जिससे जो भी कुछ करा रहे हैं, सब वे ही करा रहे हैं। तुम उनकी क्रीड़ामेंसे अपनापन हटा लो, अपनेको सूत्रधारके सिंहासनसे हटाकर दर्शकोंकी श्रेणीमें कर लो। तब तुम्हें नाटकका असली सुख मिलेगा। सूत्रधार तो नाटकका निर्माता है। उसके लिये न कोई हर्षकी बात है, न विस्मयकी। उसीने तो नाटकका निर्माण किया है। वह उसका आदि, मध्य, अन्त—सब जानता है। तुम उसकी बराबरी मत करो, नहीं तो दुखी होगे। तुम तुम्हीं हो, वह वही है। तुम खेल देखो, आनन्द करो, सुखी रहो या उसकी इच्छासे तुम भी खेल करने लगो। बस, आनन्द-ही-आनन्द है, सुख-ही-सुख है। खेलको खेल ही समझो, जहाँ इसमें सत्यकी भावना हुई कि तुम दुखी और अशान्त हुए। सूत्रधार ही सत्य है, बाकी तो सब उसीका निर्माण किया हुआ खेल है। उसमें न सत्यता है, न असत्यता। सत्यता तो है ही नहीं; क्योंकि वह बनता-बिगड़ता रहता है। असत्यता भी कहें तो कैसे कहें; क्योंकि सत्यस्वरूपकी बनायी सभी चीजें सत्य हैं, सत्यसे असत्यका निर्माण हो नहीं सकता। अतः तुम इसकी सत्यता-असत्यताके झमेलेमें पड़ो ही नहीं। इसे तो सूत्रधारपर छोड़ दो। तुम तो खेलको खेल समझो और सदा ठहाका मारकर हँसते रहो। खूब हँसो, हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाय। जोरसे हँसो, कहकहा मारकर हँसो, हँसते-हँसते पेटमें बल पड़ जाय, आँखोंमें आँसू आ जाय। खुलकर हँसो, लज्जा-संकोच छोड़कर हँसो, हँसनेमें भय मत करो। अरे! हँसना, खेलना यही तो क्रीडामें आनन्द है, यही तो मजा है। हँसे बिना खेल कैसा? भगवान् हँसकर ही तो जीवोंको फँसा लेते हैं! '**हासो जनोन्मादकरी च माया**' यही तो उनका जादू है। अतः जगत्में आकर जो रोया, वह हतभागी है, कर्महीन है। अरे! रोना क्यों? रोवे वह, जिसकी नानी मर जाय। हमें तो हँसना है, हमारी नानी—महामाया-आद्याशक्ति तो कभी मरती नहीं, वह तो अमर है। हमारे परम पिता भी उसके साथ खेलते हैं, फिर हमें रोनेसे क्या काम?

अच्छा, यदि रोना ही है तो हँसते-हँसते रोओ, कबीरकी तरह रोओ! कबीरने गाया है ***'कबीर हँसना दूर कर रोनेसे कर प्रीत'*** उनका रोना नानी मरनेका रोना नहीं है। नाटकमें करुणाका रोना है, वह तो हँसीके लिये ही है, सुखके लिये ही है। अतः मनमें कभी म्लानता न लाओ, इस क्रीड़ाको देखकर हँसो और ऐसे हँसो कि हँसते-हँसते ही विदा हों।

आप कहेंगे—जो क्रीड़ा कर रहे हैं, वे सभीको दिखायी तो देते नहीं। यह कैसी क्रीडा है? वाहजी, वाह! यह भी खूब प्रश्न किया। नाटककार तो छिपा ही रहता है, सूत्रधार रंगमंचपर कभी ही आता है। वह तो छिपकर समस्त नाटकका संचालन कर रहा है। यह कबड्डीका खेल नहीं है, आँख-मिचौनीका खेल है। कृष्ण ग्वालबालोंके साथ खेल कर रहे हैं, 'दाम! तू भी आ, सुदाम! तू भी आ जा' सभी मिल जाते हैं। 'सब आँखें बन्द कर लो, मैं वृन्दावनकी कुंजोंमें छिपा जाता हूँ। तुम सब मुझको ढूँढ़ना।' यह कहकर वृन्दावनचन्द्र वहीं पासकी निकुंजमें छिप गया। कोस-दो कोस—सौ-दो सौ गज वे नहीं गये। पासमें, बिलकुल पासमें—जहाँसे सबका ढूँढ़ना देख सकें, वे छिप गये। अब सखा उन्हें ढूँढ़ रहे हैं—कोई गहवरवन जाता है तो कोई भाण्डीरवन, कोई बेलवन तो कोई तमालवन। सब भटक रहे हैं, सब दौड़ रहे हैं। सूर्य-चन्द्रकी तरह चक्कर लगा रहे हैं। किसलिये—अपने प्यारेको खोजनेके लिये। क्यों खोज रहे हैं? क्या प्रयोजन है? अरे! प्रयोजन क्या? खेल है, आँख-मिचौनीकी लीला है, वह तो छिपकर ही बन सकते हैं। स्वयं छिप गये हैं,

सखा उन्हें ढूँढ़ रहे हैं। कोई पूर्व जाता है, कोई पश्चिमकी परिक्रमा करता है, कोई उत्तरके तीर्थोंमें भटकता है, कोई दक्षिणके वन-उपवनोंमें खोज कर रहा है। श्यामसुन्दर समीप ही छिपे-छिपे हँस रहे हैं। किसी चतुर सखाकी दृष्टि पड़ गयी, उसने जाकर पल्ला पकड़ लिया, क्यों जी, यहाँ छिपे बैठे हो? तब वह मुँहपर उँगली रखकर कहता है—'अरे! चुप, बस, तू भी मेरे पास आ जा।' उसके लिये खेल खतम हो जाता है। उस सखाका दौड़ना-धूपना, घूमना, खोजना, चक्कर लगाना बन्द हो जाता है। वह भी हँसता-हँसता दूसरोंको देखता है।

एक छोटा सखा है, नन्हा-सा बच्चा है, बहुत दौड़ नहीं सकता। प्रत्येक निकुंजोंमें जा नहीं सकता; क्योंकि वृन्दावनकी कुंजें कँटीली हैं और जमीन ककरीली है। छोटा सखा एकदम शिशु है। वह रो पड़ता है, श्यामसुन्दर! अब मैं तुम्हें स्वयं न खोज सकूँगा। तुम ही मेरे पास आ जाओ। तब वह हँसता हुआ, मुसकराता हुआ, दौड़कर आकर अपनी नन्ही-नन्ही कोमल उँगलियोंसे उसकी आँखें बन्द कर लेता है। 'अरे! घबड़ाता क्यों है? रोता क्यों है, मेरे यार! मैं कहीं दूर थोड़ा ही गया हूँ।'

'मुझको क्या ढूँढ़े बंदे! मैं तो तेरे पासमें' तब दोनों खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं, खेल खतम हो जाता है।

इसी तरह जगत्में यह आँखमिचौनीका खेल हो रहा है। खेलको खेल समझनेमें ही सुख है, कल्याण है। यदि अपने पुरुषार्थसे तुम कन्हैयाको ढूँढ़ सको तो भी खेल खतम हो जायगा। स्वयं पता न लगा सको तो जिसने पता लगा लिया है, उसीके बताये मार्गपर चले जाओ या आर्त होकर उसे पुकारो, वह स्वयं दौड़ा आयेगा। उसका भी छिपनेमें कोई अन्य प्रयोजन नहीं, वह भी क्रीड़ा ही कर रहा है, विनोदके लिये ही छिपा है, उसे इसीमें आनन्द है।

जिस प्रकार हमारे प्रभुको खेल प्रिय है, उसी तरह हम सब भी खेलको पसन्द करते हैं। पिताके गुण पुत्रमें आने ही चाहिये। आज सभी लोग खेल ही तो कर रहे हैं। कोई घर बना रहा है। कोई युद्ध कर रहा है। कोई पढ़ने जा रहा है। कोई व्यापार कर रहा है। कोई एक-दूसरेको प्यार कर रहा है, एक-दूसरेके लिये तड़प रहा है। बच्चोंके खेलमें भी तो यही सब होता है। बच्चेका एक मिट्टीका खिलौना फोड़ दीजिये—रोते-रोते घरभरको उठा लेगा, घरभरमें आफत मचा देगा। उसके लिये वह क्लेश उतना ही बड़ा है, जितना एक सम्राट्को राज्य नष्ट होनेपर होता है। बात दोनों एक ही हैं। साम्राज्य भी खिलौना है, मिट्टीका खिलौना भी खिलौना है। बच्चेको एक छोटा-सा सुन्दर खिलौना लाकर दे दीजिये। इतना खुश होगा, जितना एक गरीब भूमण्डलका राज्य पानेपर खुश हो सकता है। दोनों ही बच्चे हैं, दोनों ही नादान हैं, दोनों ही खिलौनोंसे सुखी होनेवाले हैं, दोनों ही खिलौने मायिक तथा नाशवान् हैं। हम बच्चोंके खेलको देखकर उसकी हँसी उड़ाते हैं, उसकी अवहेलना करते हैं; किन्तु स्वयं नहीं समझते कि हम भी उसी तरहके बच्चे हैं। हम भी तो खेल ही कर रहे हैं।

यह जगत् त्रिगुणात्मक है। इसकी तीन धाराएँ सनातन हैं, तीनों ही उन्हींकी हैं। तीनोंमें वे ही खेल रहे हैं। जो सात्त्विक प्रकृतिके लोग हैं, वे भजनमें, ध्यानमें, सत्संगमें, एकान्तवासमें रहकर खेलते हैं। उन्हें संसारी पदार्थोंकी अपेक्षा नहीं। शरीर-निर्वाहको कुछ चाहिये। उनकी लड़ाई किसी लौकिक पदार्थके लिये नहीं है। वे आत्मसुखमें रमण करनेके लिये आत्माका आलोचन-प्रत्यालोचन करते हैं। जो राजस प्रकृतिके हैं, उन्हें सांसारिक ऐश्वर्य चाहिये। उसका राज्य हमें मिले, वह शासन ठीक नहीं करता, इसका प्रबन्ध जन-मतके अनुकूल हो, वह शासक कमजोर है, उसे हटाकर दूसरा शासक बनाओ—इस प्रकार उनका सुख धन, ऐश्वर्य और विभूतिके उपभोगमें है। जो तामस प्रकृतिके हैं, उनको विषयोंमें ही सुख है। यही उनका ध्येय है। वहाँसे लूट, यहाँसे चोरी कर, उसे मार, यह भोग कर, वह ला—बस, इसीमें दस्युधर्मका पालन करते हुए संसारी भोग पदार्थोंमें ही लिप्त रहना। उनका सुख भौतिक सुख है। इसी तरह यह जगत् त्रिगुणात्मक है, तीनों गुणोंके संयोगसे यह चल रहा है। सभा-सम्मेलनोंमें यही सब होता है। तामस प्रकृतिके लोग इकट्ठे होकर मांस, मद्य, व्यभिचार, चोरी, जुआके षड्यन्त्र रचते हैं। सब परस्परमें इकट्ठे होकर इन्हींके लिये वाद-विवाद तथा कलह करते हैं। उनके सम्मिलनका सार यही है। राजस प्रकृतिके लोग मिलकर राजनैतिक मन्त्रणाएँ, राजस मनोरंजन तथा राजनैतिक व्याख्यान करते हैं।

सात्त्विक प्रकृतिके लोग भजन, कीर्तन, सत्संग,

कथावार्ता, यज्ञ-याग आदिके महोत्सव करके उन्हींमें सुखकी खोज करते हैं।

कुछ लोग दम्भके लिये, कुछ मान-प्रतिष्ठाके लिये, कुछ लोग द्वेषसे, ईर्ष्यासे भी करते हैं। यह भावोंका संकर है। कहीं कोई गुण बढ़ता है, कहीं कोई घटता है।

हम कुछ भी खेल करें, यदि हमारा लक्ष्य परमार्थ है, यदि श्रीहरि हमारे खेलके ध्येय हैं तो वह खेल यथार्थ खेल है। यदि प्रभुका स्थान इन मायिक पदार्थोंने ले लिया है तो हम खेल-ही-खेलमें भटक गये हैं।

भगवान्का नाम-कीर्तन, गुणकीर्तन, लीलाकीर्तन—यही सच्चा खेल है। इससे छिपे हुए भगवान् प्रकट हो जाते हैं और यह संसार हमें विस्मृत-सा हो जाता है। जबतक जगत् सत्य प्रतीत होता है तबतक भगवान् नहीं दिखायी देते। जब भगवान् दीख जाते हैं तो यह जगत् अपने-आप अदृश्य हो जाता है। इन मायिक पदार्थोंके बिना—किसी प्रकारके नशा, अमल या मादक द्रव्यके बिना जहाँ भगवन्नाम-गुण-लीला-कीर्तन सुनते-सुनते हमें आत्मविस्मृति हो जाय, वही प्रभुका सच्चा खेल है। जो जीव कुछ कालको भी उसमें सम्मिलित हो जाता है, वह उतने समयके लिये सांसारिक त्रिविध तापोंसे मुक्त हो जाता है। उसे एक अलौकिक आनन्दका अनुभव होने लगता है।

जहाँ मनुष्योंके अहंकृति न हो या कम-से-कम हो, वहाँ प्रभुकी प्रत्यक्ष लीला दिखायी देती है। उस कार्यमें जो भी जाता है, वह अपनेको एक अलौकिक छायामें स्थित अनुभव करता है। काम सभी एक-से हैं, सभीमें प्रपंचकी छाया है, सभीमें वे ही पंचभूतोंके पदार्थ हैं। वे ही पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशके बने खिलौने हैं; किंतु उनमें भाव ही प्रधान है। जहाँ जितनी ही कम अहंकृति होगी, वहाँ उतना ही अधिक रस होगा। सुदामाके तन्दुलोंमें क्या था, अपनेपनका अभाव। मेरा यह उपहार कुछ नहीं है। प्रभुने कहा—'नहीं सब कुछ है।' दुर्योधनके यहाँ किस चीजकी कमी थी, कितने पदार्थ थे; किन्तु उसमें अहंकृति थी। इतने आडम्बरसे सजाये हुए भी प्रभुने ठुकरा दिये। सबके घट-घटकी वे प्रभु जानते हैं।

समस्त उत्सव, समस्त लीला, समस्त कार्योंका ध्येय यही है कि हम इन लौकिक पदार्थोंसे ऊपर उठकर प्रभुकी ओर बढ़ सकें। यदि इन महोत्सवोंमें हमें निरन्तर भगवत्-स्मृति होती रहती है, प्रत्येक काममें भगवान्का वरद हस्त दिखायी देता है, तब तो इन सबका करना सार्थक है। नहीं तो जैसे और कार्य, वैसे ही ये कार्य। सबका मूल भगवत्-स्मृति है, समस्त क्रीड़ाके आदि, मध्य और अन्तमें हमें प्रभु-ही-प्रभु दिखायी दें तो हमें शोक, मोह—कुछ भी बाधा न दे सकेंगे। यदि हम भगवान्को भूलकर विषयोंमें आसक्त हो गये तब तो उनकी मायामें भूल गये।

यह जो कुछ दिखायी दे रहा है, यह त्रिगुणात्मक जगत् सब उनकी लीला है, सब उनका खेल है, हम सब उनकी प्रेरणासे, उनके आदेशसे उन्हें खोज रहे हैं। जगत्के माने ही हैं, जो चलता-फिरता रहे। यह चलन किसलिये है? अपने प्रियतमकी खोजके लिये, अपने जीवन-सर्वस्वसे मिलनेके लिये; जगत्के यावत् पदार्थ हैं, सब चल रहे हैं अनन्तकी ओर। किसी-न-किसी दिन भूलते-भटकते सब उसीके समीप पहुँचेंगे। सबका प्रयत्न उसीके लिये है। जानमें, अनजानमें—सब उसी महासागरसे मिलने दौड़ रहे हैं।

इस क्रीड़ाको क्रीड़ा समझना ही उनकी ओर तेजीसे बढ़ना है। इसमें सत्यका समावेश करना ही उनसे दूर भटकना है। इसलिये मेरे प्यारे बन्धुओ! आओ और उस अनादि-अनन्तकी खोज करो। हँसते-हँसते किलकारियाँ मारते हुए उन्हें खोजो। न खोज सको तो उनके लिये रोओ, आर्त होकर पुकारो। वे श्यामसुन्दर तुम्हें अपनी छातीसे चिपटा लेंगे और फिर तुम प्रत्यक्षमें उनका दर्शन-स्पर्श प्राप्त कर सकोगे। श्रीकृष्ण ही नटनागर नट हैं। जगत् ही उनकी क्रीड़ास्थली रंगमंच है। चराचर जगत्के जीव ही उनके क्रीड़ापात्र हैं। जगत्के यावन्मात्र व्यापार ही उनके क्रीड़ा-प्रसंग हैं। वे उसमें अन्तर्यामीरूपसे, गुरुरूप, आचार्यरूपसे, प्रतिभारूपसे कभी-कभी प्रत्यक्षरूपसे भी प्रकट होकर खेलते हैं फिर छिप जाते हैं। उनकी क्रीड़ाकी ओर दृष्टि देनेमें ही कल्याण है, नहीं तो अकल्याण-ही-अकल्याण है। इसीलिये भगवान्ने स्वयं अपने श्रीमुखसे कहा है—

तस्माद् देहमिमं लब्ध्वा ज्ञानविज्ञानसम्भवम्।
गुणसङ्गं विनिर्धूय मां भजन्तु विचक्षणाः॥

भ्रष्टाचार और उससे बचनेका उपाय

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भगवत्स्वरूप भक्तशिरोमणि भरतजी भगवान् राघवेन्द्र श्रीरामचन्द्रजीसे सन्त-असन्तके लक्षण पूछना चाहते हैं, परंतु संकोचवश निवेदन करनेमें हिचकते हैं। भरतजी आदि भ्रातागण सब श्रीहनुमान्जीकी ओर देखते हैं—इसलिये कि श्रीहनुमान्जी भगवान्के अतिशय प्रिय भक्त हैं, वे हमारी ओरसे निवेदन कर दें। अन्तर्यामी प्रभु सब जानते ही थे, वे कहते हैं—'हनुमान्! कहो, क्या पूछना चाहते हो?' हनुमान्जी हाथ जोड़कर कहते हैं—'नाथ! भरतजी कुछ पूछना चाहते हैं, परंतु शीलवश प्रश्न करते सकुचाते हैं।' प्रेमसिन्धु भगवान् कहते हैं—'हनुमान्! तुम तो मेरा स्वभाव जानते हो, भरतजीमें और मुझमें क्या कोई अन्तर है?' भरतजीने भगवान्के वचन सुनकर उनके चरण पकड़ लिये और अपने अनुरूप ही निवेदन किया—

नाथ न मोहि संदेह कछु सपनेहुँ सोक न मोह।
केवल कृपा तुम्हारिहि कृपानंद संदोह॥
(रा०च०मा० ७।३६)

फिर उन्होंने सन्त-असन्तके भेद और लक्षण पूछे। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने पहले सन्तोंके अति सुन्दर लक्षण बतलाकर फिर असन्तोंका स्वभाव बतलाते हुए कहा—

सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ। भूलेहुँ संगति करिअ न काऊ॥
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहि घालइ हरहाई॥
खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी। जरहिं सदा पर संपति देखी॥
जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई। हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई॥
काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन॥
बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों॥
झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना॥
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाइ महा अहि हृदय कठोरा॥

पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद।
ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद॥

लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न॥
काहू की जौं सुनहिं बड़ाई। स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई॥
जब काहू कै देखहिं बिपती। सुखी भए मानहुँ जग नृपती॥
स्वारथ रत परिवार बिरोधी। लंपट काम लोभ अति क्रोधी॥
मातु पिता गुर बिप्र न मानहिं। आपु गए अरु घालहिं आनहिं॥
करहिं मोह बस द्रोह परावा। संत संग हरि कथा न भावा॥
अवगुन सिंधु मंदमति कामी। बेद बिदूषक परधन स्वामी॥
बिप्र द्रोह पर द्रोह बिसेषा। दंभ कपट जियँ धरें सुबेषा॥
(रा०च०मा० ७।३९।१—८, ७।३९, ७।४०।१—८)

यदि सच्चाईके साथ विचार करके देखा जाय तो न्यूनाधिकरूपमें ये सभी लक्षण आज हमारे मानव-समाजमें आ गये हैं। सारी दुनियाकी यह स्थिति है। सभी ओर मनुष्य आज काम-लोभपरायण होकर असुरभावापन्न होता जा रहा है। अपने देशकी स्थिति देखकर तो और भी चिन्ता तथा वेदना होती है। जिस देशमें त्यागको ही जीवनका लक्ष्य माना गया था, जहाँपर स्त्रीमात्रको स्वाभाविक ही माता माना जाता था, जहाँ परधनकी ओर मानसिक दृष्टि डालना भी भयानक पाप माना जाता था—उसको भारी जहर ***'बिष तें बिष भारी'*** माना जाता था, वहाँ आज कलाके नामपर परस्त्रियोंके साथ पर-पुरुषोंका अनैतिक सम्बन्ध बड़ी बुरी तरहसे बढ़ा जा रहा है और पर-धनकी तो कोई बात ही न रही। दूसरेके स्वत्वका येन-केन-प्रकारेण अपहरण करना ही बुद्धिमानी और चातुरी समझी जाती है। कुछ ही समय पूर्व ऐसा था कि मुँहसे जो कुछ कह दिया जाता था, उसको प्राणपणसे निबाहा जाता था। आज कानूनी दस्तावेज भी बदले जानेकी नीयतसे बनाये जाते हैं। मिथ्याभाषण तो स्वभाव बन गया है। बड़े-से-बड़े पुरुष स्वार्थके लिये झूठ बोलते हैं। बड़े-बड़े राष्ट्रोंके प्रसिद्ध अधिनायक, जनताके नेता, दलविशेषोंके संचालक, प्रख्यात संस्थाओंके पदाधिकारी, सरकारके ऊँचे-से-ऊँचे अधिकारी, बड़े-से-बड़े अफसर (और) छोटे-से-छोटे कर्मचारी, बड़े-बड़े व्यापारी (और) छोटे व्यापारी (भी), दलाल, कमीशन-एजेन्ट, रेल और पोस्टके छोटे-बड़े कर्मचारी—सभी बेईमानीमें आज एक-से हो रहे हैं, मानो होड़ लगाकर एक-दूसरेसे आगे बढ़नेकी जी-तोड़ कोशिशमें लगे हुए हैं। चोर-बाजारी,

घूसखोरी, भ्रष्टाचार, अनैतिकता लोगोंके स्वभावगत हो गयी है। सभी मानो बेईमानीका बाजार सजाये, एक-दूसरेको लूटने, ठगने और उसकी जड़ काटनेके लिये तैयार बैठे हैं। ऐसे बहुत थोड़े लोग होंगे, जिनकी ईमानदारीमें विश्वास किया जा सके। नये-नये कानून बनते हैं और बेईमानीके नये-नये रास्ते निकलते जाते हैं। इसका कारण यही है कि जिनको कानून मानना है और जिनके जिम्मे उसको मनवाना है, वे दोनों ही ईमानदार नहीं हैं। ऊपरसे एक-दूसरेको बेईमान बतलाते हुए भी दोनों ही नये-नये तरीकोंसे बेईमानी बढ़ानेमें लगे हैं। अफसर एवं राजकर्मचारी कहते हैं—'व्यापारी चोर हैं, इनको दण्ड मिलना चाहिये' और व्यापारी अफसरों, अधिकारियों और राजकर्मचारियोंकी खुलेआम चोरी और बेईमानी देखते हैं। चोरी और बेईमानी कैसे बन्द हो? यह अशोभनीय और अवाञ्छनीय परिस्थिति कैसे बदली जाय? अपने देश-राष्ट्रके लिये यह चिन्त्य है।

एक युग था, जिसमें लोगोंका यह विश्वास था कि सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामी भगवान् सदा-सर्वदा सर्वत्र हैं और वे हमारी प्रत्येक क्रियाको देखते हैं। हम एकान्तमें कोई पाप करते हैं, मनमें भी पापभावना करते हैं तो उसे भी भगवान् जानते-देखते हैं। इसलिये उनमें भगवान्से संकोच था। भगवान्के भयसे लोग बुरा कर्म करनेमें डरते थे।

इसके साथ ही चार बातें और हिन्दू-संस्कृतिमें छोटे-बड़े सबके स्वभावगत-सी हो गयी थीं—(१) मनुष्य-जीवनका चरम और परम उद्देश्य मोक्ष या भगवत्प्राप्ति है। इसी लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये मानव-जीवनमें साधन करना है। (२) पुनर्जन्म अवश्य होगा और उसमें हमें अपने अच्छे-बुरे कर्मोंका फल निश्चितरूपसे भोगना पड़ेगा। (३) शास्त्र सत्य हैं और उनके कथनानुसार सुख-दुःख हमारे कर्मोंके फल हैं। (४) कर्तव्य-पालन करना ही हमारा धर्म है, केवल अधिकार पाना धर्म नहीं। इन चारों बातोंके कारण स्वभावसे ही भोगोंके त्यागका महत्त्व था, उसीमें जीवनकी महत्ता मानी जाती थी। चोरी-जारी आदि पापोंका फल विविध योनियोंमें एवं नरकादिमें अवश्य भोगना पड़ेगा—यह विश्वास था। दूसरेकी किसी भी वस्तुपर मन चल जाना भी पाप है और उसे छल-बल-कौशलसे ले लेना तो महान् अपराध है—यह मान्यता थी। सुख-दुःख हमारे कर्मके अनिवार्य फल हैं। बुरे कर्म करनेपर उसका अच्छा फल हो ही नहीं सकता, फिर बुरा कर्म क्यों करें—यह दृढ़ भावना थी और हमें शास्त्रानुसार अपना कर्तव्य-पालन करते जाना है, कर्मका फल तो भगवान्के हाथ है, हमारा फलमें अधिकार नहीं, कर्ममें ही अधिकार है—यह दृढ़ आस्था थी। इससे लोग स्वभावसे ही पापाचरणसे बचना चाहते थे और बचते थे।

आज ईश्वरका कोई भय नहीं। शास्त्रोंमें तथा कर्मोंके फल और पुनर्जन्ममें विश्वास उठता जा रहा है, सभी अधिकार चाहते हैं। कर्तव्यपर किसीका ध्यान नहीं है। शक्तिमत्ता, अधिकार और धनका लोभ इतना बढ़ गया है कि उसने मनुष्यको असुर ही नहीं, पिशाच बना दिया है। इसीसे आजका मानव एक-दूसरेपर खून चूसनेका दोष लगाता है और स्वयं मानो छल-बल-कौशलसे दिन-रात खून चूसनेका ही विशद व्यापार कर रहा है। उसने केवल इसी सिद्धान्तको मान लिया है कि किसी भी उपायसे हो, धनकी—भोग-पदार्थोंकी प्राप्ति होनी चाहिये; बस! यह कामोपभोग ही सब कुछ है—'**कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः॥**' (गीता १६। ११)

मनुष्यके लिये उत्तम लोकोंमें जानेके सात बड़े सुन्दर उपाय सत्पुरुषोंने बतलाये हैं, जो ये हैं—(१) अपने धर्मपालनके लिये सुखपूर्वक नाना प्रकारके कष्टोंको स्वीकार करना, यह तप है। (२) देश, काल और पात्रको देखकर सत्कारपूर्वक निष्कामभावसे अपनी वस्तु दूसरेको देना, दान है। (३) विषाद, कठोरता, चंचलता, व्यर्थचिन्तन, राग-द्वेष और मोह, वैर आदि कुविचारोंको चित्तसे हटाकर उसे परमात्मामें लगाना, यह शम है। (४) विषयोंके समीप होनेपर भी इन्द्रियोंको उनकी ओर जानेसे रोक रखना, दम है। (५) तन, मन, वचनसे बुरे कर्म करनेमें संकोच होना, लज्जा है। (६) मनमें छल, कपट या दम्भका अभाव होना, यह सरलता है। (७) बिना किसी भेदभावसे प्राणिमात्रके दुःखको देखकर हृदयका द्रवित हो जाना और उनके दुःखोंको दूर करनेके

लिये चेष्टा करना, यह दया है।

इन सातोंका पालन करनेवाला पुरुष कल्याण-भाजन होता है। किंतु यदि इनके कारण वह अभिमान करता है तो उसके ये तप आदि गुण मानरूपी तमसे निष्फल होकर नष्ट हो जाते हैं। शास्त्रोंमें कहा गया है—

यथा सूर्योदये जाते तमोरूपं न तिष्ठति॥
अहङ्काराङ्कुरस्याग्रे तथा पुण्यं न तिष्ठति।

(देवीभागवत ४। ७। २५-२६)

अतः अभिमान तो किसी प्रकार न आने दे, जो मनुष्य श्रेष्ठ विद्या पढ़कर अपनेको ही पण्डित मानता है और अपनी विद्यासे दूसरेके यशको घटाता है, उसको उत्तम लोककी प्राप्ति नहीं होती और उसकी पढ़ी हुई वह उत्तम ब्रह्मविद्या उसे ब्रह्मकी प्राप्ति नहीं कराती। अध्ययन, मौन, अग्निहोत्र और यज्ञ—ये चार कर्म मनुष्यको भवभयसे छुड़ानेवाले हैं, परंतु यदि यही अभिमानके साथ या मानकी प्राप्तिके लिये किये जायँ तो उलटे भय देनेवाले हो जाते हैं।* इसलिये कहीं सम्मान मिले तो फूल नहीं जाना चाहिये और अपमान हो तो संताप भी नहीं मानना चाहिये।

'मैंने दान दिया है, मैंने इतने यज्ञ किये हैं, मैंने इतना पढ़ा है, मैंने ऐसे-ऐसे व्रत किये हैं' इस प्रकार जो अभिमानभरी डींगें मारता हुआ ये कर्म करता है, उसको यही कर्म शुभफल न देकर उलटा भय देनेवाले हो जाते हैं। इसलिये अभिमानका बिल्कुल त्याग करना चाहिये। ये हैं—महाभारतके निचोड़ आदर्श-उपदेश, जिन्हें मानकर चलनेसे ही हम वर्तमान समयमें अपना पथ सुधार सकते हैं।

यह कहा जा सकता है कि धनसे सुख मिलता है; क्योंकि उससे प्रायः सभी आवश्यकताओंकी पूर्ति होती है। यह आंशिक सत्य भी है, परंतु यह सुख वस्तुतः धनका नहीं है, हमारी आत्म-भावनाका है। धनमें तो सुख है ही नहीं। सुख है आत्माकी शान्तिमें। जो अशान्त है—दिन-रात उत्तरोत्तर बढ़ती हुई कामनाकी आगसे जलता है, उसको सुख कहाँ—**'अशान्तस्य कुतः सुखम्।'** (गीता २। ६६) यह नियम है कि जैसे आगमें ईंधन तथा घी डालते रहनेसे आग बुझती नहीं—प्रत्युत बढ़ती ही है, वैसे ही भोग-कामनाकी पूर्तिसे कामना घटती नहीं, बल्कि बढ़ती ही है। सौवाला हजारों-लाखोंकी चाह करता है तो लाखवाला करोड़ों-अरबोंकी चाह करता है। एक नियम यह भी है कि एक अभावकी पूर्ति अनेकों नये अभावोंकी सृष्टि करनेवाली होती है और जबतक अभावका अनुभव है, तबतक प्रतिकूलता है, प्रतिकूलता रहते चित्त सर्वथा अशान्त रहेगा, अशान्तचित्तमें सुख हो ही नहीं सकता। लोग भूलसे मानते हैं कि पैसेवाले बड़े सुखी हैं; क्योंकि यह बात यथार्थ नहीं है। उनके हृदयमें जैसी आग धधकती है, वैसी गरीबोंके हृदयमें शायद नहीं धधकती। इसका अनुमान भुक्तभोगी ही कर सकते हैं।

उस दिन एक सज्जनने बहुत ठीक कहा था कि पहले यद्यपि कुछ लोग ऐसे भी थे, जो भगवान् या धर्मका भय नहीं मानते थे और पाप करते थे तथापि उनमें यह साहस न था कि वे अपनेको निर्दोष ही नहीं, जनताका और समाजका सेवक भी बतायें और उलटे पाप न करनेवालोंको डरायें-धमकायें तथा उन्हें पापी सिद्ध करें। आज तो हमारी यह दशा हो गयी है कि हम स्वयं धर्म-सेवा और देश-सेवातकके नामपर अनवरत पाप करते हैं तथा अपने पापी गिरोहके बलपर निष्पाप लोगोंको डराते-धमकाते हैं एवं उन्हें पापी सिद्ध करना चाहते हैं। जनसेवक बतलाकर डाकूका काम करना, भाई बनकर किसीका सतीत्वापहरण करना, धार्मिक बनकर लोगोंको ठगना, गुरु बनकर धन-धर्मको लूटना, रक्षक नियुक्त होकर भक्षक बन जाना और पहरेदार बनकर चोरी करना आज बुद्धिमानी और गौरवका कार्य बन गया है। सभी क्षेत्रोंमें लोग अपने-अपने चरित्रोंपर ध्यान देकर देखें तो उन्हें उपर्युक्त कथनमें जरा भी अतिशयोक्ति नहीं मालूम होगी। यह हमारे नैतिक पतनका एक बड़ा दुःखद स्वरूप है।

चारों ओर दलबन्दी है। हम मानो अपनेको ही छलते हुए कहते हैं कि 'राष्ट्रियता बढ़ रही है, पर वस्तुतः प्रान्तीयता, वर्गवाद और व्यक्तिवाद ही बढ़ता जा

* चत्वारि कर्माण्यभयंकराणि भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि। मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं मानेनाधीतमुत मानयज्ञः॥ (महा०उद्योग० ३३। ७३)

रहा है। दूसरोंको फासिस्ट बताना और स्वयं वैसा ही काम करना स्वभाव-सा हो गया है, इसका प्रतिकार कैसे हो?' यह विचारणीय है।

हमारी समझसे इसका एक ही उपाय है और वह उपाय है अध्यात्मप्रधान प्राचीन हिन्दू-संस्कृतिकी पुनः प्रतिष्ठा। जबतक मनुष्य-जीवनका लक्ष्य भगवान् नहीं होंगे, जबतक पुनर्जन्म और कर्मफलमें सुदृढ़ विश्वास नहीं होगा, जबतक शास्त्रोंके अनुसार पवित्र जीवन बनाना हमारे जीवनकी अनिवार्य साधना न होगी और ऐसा बनकर जबतक किसी भी लोभ, भय या स्वार्थसे धर्मच्युत न होनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा न होगी, तबतक किसी भी आन्दोलनसे, प्रचारसे और कानूनसे भ्रष्टाचार, असदाचार और दुष्कर्म नहीं रुकेंगे। जबतक यह पापका प्रवाह न रुकेगा, इसका उद्गमस्थल न सूखेगा, तबतक दुःखका प्रवाह भी नहीं रुक सकेगा। अतः हम सबका कर्तव्य है कि अध्यात्मप्रधान संस्कृतिकी प्रतिष्ठामें एवं सदाचारमें लग जायँ, तभी हमारा, हमारे देश और धर्मका मंगलमय कल्याण होगा। यह ध्रुव सत्य है।

संतकी विचित्र असहिष्णुता

एक सन्त नौकामें बैठकर नदी पार कर रहे थे। सन्ध्याका समय था। आखिरी नाव थी, इससे उसमें बहुत भीड़ थी। सन्त एक किनारे अपनी मस्तीमें बैठे थे। दो-तीन मनचले आदमियोंने सन्तका मजाक उड़ाना शुरू किया। सन्त अपनी मौजमें थे, उनका इधर ध्यान ही नहीं था। उन लोगोंने सन्तका ध्यान खींचनेके लिये उनके समीप जाकर पहले तो शोर मचाना और गालियाँ बकना आरम्भ किया। जब इसपर भी सन्तकी दृष्टि नासिकाके अग्रभागसे न हटी, तब वे सन्तको धीरे-धीरे ढकेलने लगे। पास ही कुछ भले आदमी बैठे थे। उन्होंने उन बदमाशोंको डाँटा और सन्तसे कहा—'महाराज! इतनी सहनशीलता अच्छी नहीं है, आपके शरीरमें काफी बल है, आप इन बदमाशोंको जरा-सा डाँट देंगे तो ये अभी सीधे हो जायँगे।' अब सन्तकी दृष्टि उधर गयी। उन्होंने कहा—'भैया! सहनशीलता कहाँ है, मैं तो असहिष्णु हूँ, सहनेकी शक्ति तो अभी मुझमें आयी ही नहीं है। हाँ, मैं इसका प्रतीकार अपने ढंगसे कर रहा था। मैं भगवान्से प्रार्थना करता था कि 'वे कृपा कर इनकी बुद्धिको सुधार दें, जिससे इनका हृदय निर्मल हो जाय।' सन्तकी और उन भले आदमियोंकी बात सुनकर बदमाशोंके क्रोधका पारा बहुत ऊपर चढ़ गया। वे सन्तको उठाकर नदीमें फेंकनेको तैयार हो गये। इतनेमें ही आकाशवाणी हुई—'हे सन्तशिरोमणि! ये बदमाश तुम्हें नदीके अथाह जलमें डालकर डुबो देना चाहते हैं, तुम कहो तो इनको अभी भस्म कर दिया जाय।' आकाशवाणी सुनकर बदमाशोंके होश हवा हो गये और सन्त रोने लगे। सन्तको रोते हुए देखकर बदमाशोंने निश्चित समझ लिया कि अब यह हमलोगोंको भस्म करनेके लिये कहनेवाले हैं। वे काँपने लगे। इसी बीचमें सन्तने कहा—'ऐसा न करें स्वामी! मुझ तुच्छ जीवके लिये इन कई जीवोंके प्राण न लिये जायँ। प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और यदि मेरे मनमें इनके विनाशकी नहीं, परंतु इनके सुधारकी सच्ची आकांक्षा है तो आप इनको भस्म न करके इनके मनमें बसे हुए कुविचारों और कुभावनाओंको, इनके दोषों और दुर्गुणोंको तथा इनके पापों और तापोंको भस्म करके इनको निर्मल हृदय और सुखी बना दीजिये।' आकाशवाणीने कहा—'सन्तशिरोमणि! ऐसा ही होगा। तुम्हारा भाव बहुत ऊँचा है। तुम हमको अत्यन्त प्यारे हो। तुम्हें धन्य है।'

तू ही माता, तू ही पिता है!

(श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

प्रभुकी सृष्टि अत्यन्त सुन्दर है। वे तो सुन्दरताकी प्रतिमूर्ति ही हैं। इतना ही नहीं, सब नामोंमें, सब रूपोंमें भी वे ही बसते हैं। उनके नाम-रूप—सभी अनन्त हैं।

शंकालु कहता है—फिर भी हम क्यों आकृष्ट हों प्रभुकी ओर? वेदके ऋषि कारण देते हैं—'**त्वमस्माकं तवा स्मासि।**' (ऋग्वेद ८। ९२। ३२) 'तुम हमारे हो हम तुम्हारे हैं।' स्वामी रामतीर्थने इसी भावमें विभोर होकर कहा था—'***तारे क्या रोशनीसे न्यारे हैं! तुम हमारे हो, हम तुम्हारे हैं!!***' कितना प्यारा, कितना मनोहर, कितना आकर्षक है, आत्मीयताका यह सम्बन्ध!' और जब यह स्थिति है तो हमें पूरी छूट है कि हम उनसे चाहे जो सम्बन्ध स्थापित कर लें। तुलसीदासजी भी तो भगवान् रामसे कहते हैं—'***तोहि मोहि नाते अनेक मानिये जो भावै।***' उनकी अभिलाषा मात्र इतनी है—'***ज्यों-त्यों तुलसी कृपालु चरन-सरन पावै।***' वैदिक ऋषिकी अनुभूति है—**स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा॥** (यजुर्वेद ३२। १०)

वह परमेश्वर हम सबका बन्धु है, भाई है। वह हम सबको जन्म देनेवाला है। वह जानता है, सारे धामोंको, सारे भुवनोंको। गीता कहती है—'**गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।**' (९। १८)

'**अग्निमीडे**'—अग्निकी प्रार्थनासे ऋग्वेदका श्रीगणेश हुआ। इन्हीं अग्निरूप परमेश्वरसे ऋषिकी प्रार्थना है—**स नः पितेव सूनवे ऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये।** (ऋग्वेद १। १। ९)

'अग्निदेव! आप हमें पिताकी भाँति उत्तम ज्ञान प्रदान करें, जिससे हमें सारे सुखोंकी प्राप्ति हो और हमारा कल्याण हो।' पिता जहाँ पुत्रका प्रेमपूर्वक पालन-पोषण और रक्षण करता है, वहाँ वह रिक्थ (पैत्रिक सम्पत्ति)-के रूपमें अपने ज्ञानका भण्डार भी पुत्रको दे डालता है और जहाँ ज्ञान है, वहाँ सुख होगा ही, कल्याण होगा ही। उनकी यह भावना पग-पगपर मुखरित होती है—

हम तेरे हैं तुही हमारा सब से प्यारा एक तुही।
ज्ञान प्रेम औ सुखसे पूरित करनेवाला एक तुही॥

ऋषिने परमेश्वरको पिता, भ्राता, मित्र और पुत्र-जैसे निकटके सम्बोधनों से पुकारा है—

त्वामग्ने पितरमिष्टिभिर्नरस्त्वां
भ्रात्राय शम्या तनूरुचम्।
त्वं पुत्रो भवसि यस्तेऽविधत्त्वं
सखा सुशेवः पास्याधृषः॥

(ऋग्वेद २। १। ९)

'हे अग्ने, आप हमारे पालक पिता हैं, दयालु भ्राता हैं, सुखदाता मित्र हैं और पुत्रकी भाँति हमारे त्राता हैं। इन नाना रूपोंमे आप अपने उपासकोंको लाभ पहुँचाते हैं।'

पितारूपमें तू ही पालक, सखारूपमें सुहृद तुही।
पुत्ररूपमें त्राता है तू, दयाशील भ्राता तू ही॥

वेदका एक और वचन है—

अग्निं मन्ये पितरमग्निमापि-
मग्निं भ्रातरं सदमित्सखायम्॥

(ऋग्वेद १०। ७। ३)

'अग्निरूप परमेश्वरको ही मैं सदा अपना पिता, अग्रणी, सखा, भ्राता और मित्र मानता हूँ।' प्रभु हमारे पिता हैं, पितामह हैं, अन्तरात्मा हैं। वे ही हमारे त्राता हैं, सुखदाता हैं। हम इस तथ्यको समझ लें तो हमारा कल्याण ही कल्याण है। ऋषिके अन्तस्से निकली यह ऋचा हमारी मार्गद्रष्ट्री है—

त्राता नो बोधि दद्दृशान आपि-
रभिख्याता मर्डिता सोम्यानाम्।
सखा पिता पितृतमः पितॄणां
कर्तेमु लोकमुशते वयोधाः॥

(ऋग्वेद ४। १७। १७)

'परमात्मा हमारे त्राता हैं, रक्षक हैं। हम जो कुछ करते हैं, वह सब परमात्मा देखते हैं। वे सर्वव्यापी हैं। वे हमारे अन्तरात्मा हैं। वे हमारे मित्र हैं, पिता हैं,

पितामह हैं। वे ही कर्ता हैं, वे ही जीवनदाता, जगदीश्वर हैं। हम इस तथ्यको जानें और समझें।' ऋषियोंकी आत्मिक प्रयोगशालामें ऐसे अनेक मन्त्र भरे पड़े हैं। वे शतक्रतुरूपी परमेश्वरसे प्रार्थना करते हैं—

त्वं हि नः पिता वसो त्वां माता शतक्रतो बभूविथ। अधा ते सुम्नमीमहे। (ऋग्वेद ८।९८।११)

'शतक्रतो! अनन्तसामर्थ्यवान् प्रभो! तू ही हमारा पिता है, तू ही हमारी माता, तू ही हमें ठौर-ठिकाना देनेवाला है। तू हमें सुख प्रदान कर।'

मित्रो न सत्य उरुगाय॥ (ऋग्वेद १०।२९।४)

हे प्रभु! तू हमारे सच्चे मित्रकी भाँति है; अर्थात्—

तू ही माता तुही पिता है, बन्धु सखा है प्रभो तुही।
जितने नाते हैं इस जगमें, सब नातोंमें बसा तुही॥
कृपा माँगते हैं हम तेरी, तू सबका कल्याण करे।
तुझसे बढ़कर हितू कौन है? स्नेही प्यारा एक तुही॥

इन्द्ररूप भगवान्‌से भी ऋषि प्रार्थना करते हैं—

वयं घा ते त्वे इद्विन्द्र विप्रा अपिष्मसि।
नहि त्वदन्यः पुरुहूत कश्चन मघवन्नस्ति मर्डिता॥
(ऋग्वेद ८।६६।१३)

'इन्द्रदेव! हम आपके उपासक ही हैं। हम आपके ही पुत्र हैं। आपकी ही कृपाके पात्र हैं, आपपर ही निर्भर रहकर हम अपना जीवन बिताते हैं। हे पूज्य, हे मघवन्! आपसे बढ़कर सुखदाता और कोई नहीं है।'

तू ही सच्चा मित्र हमारा, सुखदाता है एक तुही।
किसे पुकारें हम संकटमें? माता त्राता एक तुही॥

मातासे बढ़कर प्यारा कौन होता है? हम बिना किसी संकोचके उससे सब कुछ माँग लेते हैं। उसे हमारी सारी सुख-सुविधाओं, सारी आवश्यकताओंका ध्यान रहता है। नाना कष्ट उठाकर माँ हमें भरपूर सुख पहुँचाती है। और पिता! हमारे लिये पिताके कष्ट-सहनका, उनके त्याग का कोई पार है? प्रभु हमारा पिता भी है, माता भी। उसकी अपरम्पर कृपा है हमपर। क्या नहीं देता वह हमें?

अभ्यूर्णोति यन्नग्नं भिषक्ति विश्वं यत्तुरम्। प्रेमन्धः ख्यन्निःश्रोणो भूत्॥ (ऋग्वेद ८।७९।२)

'परमेश्वर नंगेको वस्त्रसे ढँकते हैं। रोगीको वे चंगा करते हैं। अन्धेको वे दृष्टि देते हैं, जिससे वह भलीभाँति देखने लगता है। लँगड़ा व्यक्ति उनकी कृपासे चलने लगता है।' धन्य हैं वे दयालु प्रभु—

अन्धेको तू दृष्टी देता लँगड़ेको चलनेकी शक्ति।
रोगीको चंगा करता है, धन्वन्तरि है एक तुही॥

ऐसे सर्वसमर्थ प्रभुसे बढ़कर हमारा हितू और कौन हो सकता है? अपने प्रेमसे हमें सदैव सराबोर रखनेवाले, हमारे सभी अभावोंकी पूर्ति करनेवाले परमेश्वर हमारे सबके जन्मदाता, पालक और पोषक हैं। हम इस तथ्यको हृदयंगम करें तो हमारे मानसमें मानवमात्रके प्रति सहज ही भ्रातृ-भावकी भावना भर उठेगी। ऋषि-वचन है—

प्र भ्रातृत्वं सुदानवोऽध द्विता समान्या। मातुर्गर्भे भरामहे॥ (ऋग्वेद ८।८३।८)

'माताके गर्भसे ही हमें परस्पर भाईचारेका, भ्रातृत्वका वरदान मिला है। एक-दूसरेके साथ मिलकर रहने और मिल-बाँटकर खाने-पीनेका भाव हमें अपने जन्म-कालसे ही प्राप्त हुआ।' मानवमात्रके प्रति भ्रातृत्वका हमारा यह गुण, यह पारस्परिक प्रेम सतत बढ़ता रहे, यहीं हमारी प्रभुसे प्रार्थना है—

हम सब तेरे बेटे हैं प्रभु, मिल जुल कर हम रहें सदा।
जन्मजात यह प्रेम परस्पर सदा बढ़ाता रहे तुही॥

हरिरेव जगजगदेव हरिर्हरितो जगतो नहि भिन्नतनुः।
इति यस्य मतिः परमार्थगतिः स नरो भवसागरमुत्तरति॥

हरि ही जगत् हैं, जगत् ही हरि है, हरि और जगत्में किंचिन्मात्र भी भेद नहीं है। जिसकी ऐसी मति है, उसीकी परमार्थमें गति है, वह पुरुष संसार-सागरको तर जाता है। [शुकरहस्य]

भगवान् शंकर

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

'शंकर' का अर्थ है—कल्याण करनेवाला। अतः भगवान् शंकरका काम केवल दूसरोंका कल्याण करना है। जैसे संसारमें लोग अन्नक्षेत्र खोलते हैं, ऐसे ही भगवान् शंकरने काशीमें मुक्तिका क्षेत्र खोल रखा है। गोस्वामीजी महाराज कहते हैं—

मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानि कर।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न॥

(रा०च०मा० ४।१ सो०)

शास्त्रमें भी आता है—'**काशीमरणान्मुक्तिः।**' काशीको 'वाराणसी' भी कहते हैं। 'वरुणा' और 'असी'—दोनों नदियाँ गंगाजीमें आकर मिलती हैं, उनके बीचका क्षेत्र 'वाराणसी' कहलाता है। इस क्षेत्रमें मरनेवालेकी मुक्ति हो जाती है।

यहाँ शंका होती है कि काशीमें मरनेवालेके पापोंका क्या होता है? इसका समाधान है कि काशीमें मरनेवाले पापीको पहले 'भैरवी यातना' भुगतनी पड़ती है, फिर उसकी मुक्ति हो जाती है। भैरवी यातना बड़ी कठोर यातना है, जो थोड़े समयमें सब पापोंका नाश कर देती है। काशीके केदारखण्डमें मरनेवालेको तो भैरवी यातना भी नहीं भोगनी पड़ती!

सालगरामजीने कहा है—

जग में जिते जड़ जीव जाकी अन्त समय,
जम के जबर जोधा खबर लिये करे।
काशीपति विश्वनाथ वाराणसी वासिन की,
फाँसी यम नाशन को शासन दिये करे॥
मेरी प्रजा ह्वै के किम पेहैं काल दण्डत्रास,
सालग, यही विचार हमेशा हिये करे।
तारक की भनक पिनाकी यातें प्रानिन के,
प्रान के पयान समय कान में किये करे॥

काशीमें मरनेवालोंके दायें कानमें भगवान् शंकर तारकमन्त्र—'राम' नाम सुनाते हैं, जिसको सुननेसे उनकी मुक्ति हो जाती है। अध्यात्मरामायणमें शंकरजी कहते हैं—

अहं भवन्नाम गृणन्कृतार्थो
वसामि काश्यामनिशं भवान्या।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं
दिशामि मन्त्रं तव राम नाम॥

(युद्ध० १५।६२)

'हे प्रभो! आपके नामोच्चारणसे कृतार्थ होकर मैं दिन-रात पार्वतीके साथ काशीमें रहता हूँ और वहाँ मरणासन्न मनुष्योंको उनके मोक्षके लिये आपके तारक-मन्त्र राम-नामका उपदेश देता हूँ।'

गोस्वामीजी कहते हैं—

महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासीं मुकुति हेतु उपदेसू॥

(रा०च०मा० १।१९।३)

भगवान् शंकरका राम-नामपर बहुत स्नेह है। एक बार कुछ लोग एक मुरदेको श्मशानमें ले जा रहे थे और 'राम-नाम सत् है' ऐसा बोल रहे थे। शंकरजीने राम-नाम सुना तो वे भी उनके साथ हो गये। जैसे पैसोंकी बात सुनकर लोभी आदमी उधर खिंच जाता है, ऐसे ही राम-नाम सुनकर शंकरजीका मन भी उन लोगोंकी ओर खिंच गया। अब लोगोंने मुरदेको श्मशानमें ले जाकर जला दिया और वहाँसे लौटने लगे। शंकरजीने देखा तो विचार किया कि बात क्या है? अब कोई आदमी राम-नाम ले ही नहीं रहा है! उनके मनमें आया कि उस मुरदेमें ही कोई करामात थी, जिसके कारण ये सब लोग राम-नाम ले रहे थे। अतः उसीके पास जाना चाहिये। शंकरजीने श्मशानमें जाकर देखा कि वह तो जलकर राख हो गया है। अतः शंकरजीने उस मुरदेकी राख अपने शरीरमें लगा ली और वहीं रहने लगे! राख और मसान—दोनोंके पहले अक्षर लेनेसे 'राम' हो जाता है! एक कविने कहा है—

रुचिर रकार बिन तज दी सती-सी नार,
कीनी नाहिं रति रुद्र पाय के कलेश को।
गिरिजा भई है पुनि तप ते अपर्णा तबे,
कीनी अर्धंगा प्यारी लागी गिरिजेश को॥

विष्णुपदी गंगा तउ धूर्जटी धरि न सीस,
भागीरथी भई तब धारी है अशेष को।
बार-बार करत रकार व मकार ध्वनि,
पूरण है प्यार राम-नाम पे महेश को॥

सतीके नाममें 'र' कार अथवा 'म' कार नहीं हैं, इसलिये शंकरजीने सतीका त्याग कर दिया। जब सतीने हिमालयके यहाँ जन्म लिया, तब उनका नाम गिरिजा (पार्वती) हो गया। इतनेपर भी शंकरजी मुझे स्वीकार करेंगे या नहीं—ऐसा सोचकर पार्वतीजी तपस्या करने लगीं। जब उन्होंने सूखे पत्ते भी खाने छोड़ दिये; तब उनका नाम 'अपर्णा' हो गया। गिरिजा और अपर्णा—दोनों नामोंमें 'र' कार आ गया तो शंकरजी इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने पार्वतीजीको अपनी अर्धांगिनी बना लिया। इसी तरह शंकरजीने गंगाको स्वीकार नहीं किया, परंतु जब गंगाका नाम 'भागीरथी' पड़ गया, तब शंकरजीने उनको अपनी जटामें धारण कर लिया। अतः भगवान् शंकरका राम-नाममें विशेष प्रेम है। वे दिन-रात राम-नामका जप करते रहते हैं—

तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती॥
(रा०च०मा० १।१०८।७)

केवल दुनियाके कल्याणके लिये ही वे राम-नामका जप करते हैं, अपने लिये नहीं।

शंकरके हृदयमें विष्णुका और विष्णुके हृदयमें शंकरका बहुत अधिक स्नेह है। शिव तामसमूर्ति हैं और विष्णु सत्त्वमूर्ति हैं, पर एक-दूसरेका ध्यान करनेसे शिव श्वेतवर्णके और विष्णु श्यामवर्णके हो गये। वैष्णवोंका तिलक (ऊर्ध्वपुण्ड्र) त्रिशूलका रूप है और शैवोंका तिलक (त्रिपुण्ड्र) धनुषका रूप है। अतः शिव और विष्णुमें भेदबुद्धि नहीं होनी चाहिये—

संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास॥
(रा०च०मा० ६।२)

उभयोः प्रकृतिस्त्वेका प्रत्ययभेदेन भिन्नवद् भाति।
कलयति कश्चिन्मूढो हरिहरभेदं विनाशास्त्रम्॥

अर्थात् (१) हरि और हर—दोनोंकी प्रकृति (वास्तविक तत्त्व) एक ही है, पर निश्चयके भेदसे दोनों भिन्नकी तरह दीखते हैं। कुछ मूर्खलोग हरि और हरको भिन्न-भिन्न बताते हैं, जो विनाश करनेका अस्त्र **(विनाश-अस्त्रम्)** है।

(२) हरि और हर—दोनोंकी प्रकृति एक ही है अर्थात् दोनों एक ही 'हृ' धातुसे बने हैं, पर प्रत्यय ('इ' और 'अ')-के भेदसे दोनों भिन्नकी तरह दीखते हैं। कुछ मूर्खलोग हरि और हरको भिन्न-भिन्न बताते हैं, जो शास्त्रसे विरुद्ध **(विना-शास्त्रम्)** है।

अतः शिव और विष्णुमें कभी भेदबुद्धि नहीं करनी चाहिये—

शिवश्च हृदये विष्णोः विष्णोश्च हृदये शिवः।

कहीं-कहीं ऐसा भी आता है कि वैष्णव शिवलिंगको नमस्कार न करे, परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि वैष्णवका शंकरसे द्वेष है। इसका तात्पर्य यह है कि वैष्णवोंके मस्तकपर ऊर्ध्वपुण्ड्रका जो तिलक रहता है, उसमें विष्णुके दो चरणोंके बीचमें लक्ष्मीजीका लाल रंगका चिह्न (श्री) रहता है। लक्ष्मीजीको शिवलिंगके पास जानेमें लज्जा आती है। अतः वैष्णवोंके लिये शिवलिंगको नमस्कार करनेका निषेध आया है।

गोस्वामीजी महाराजने कहा है—

'सेवक स्वामि सखा सिय पी के।'
(रा०च०मा० १।१५।२)

अर्थात् भगवान् शंकर रामजीके सेवक, स्वामी और सखा—तीनों ही हैं। रामजीकी सेवा करनेके लिये शंकरने हनुमान्‌जीका रूप धारण किया। वानरका रूप उन्होंने इसलिये धारण किया कि अपने स्वामीकी सेवा तो करूँ, पर उनसे चाहूँ कुछ भी नहीं; क्योंकि वानरको न रोटी चाहिये, न कपड़ा चाहिये और न मकान चाहिये। वह जो कुछ भी मिले, उसीसे अपना निर्वाह कर लेता है। रामजीने पहले रामेश्वर शिवलिंगका पूजन किया, फिर लंकापर चढ़ाई की। अतः भगवान् शंकर रामजीके स्वामी भी हैं। रामजी कहते हैं—***'संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास। ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास॥'*** अतः भगवान् शंकर रामजीके सखा भी हैं।

भगवान् शंकर आशुतोष (शीघ्र प्रसन्न होनेवाले)

हैं। वे थोड़ी-सी उपासना करनेसे ही प्रसन्न हो जाते हैं। इस विषयमें अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं। एक बधिक था। एक दिन उसको खानेके लिये कुछ नहीं मिला। संयोगसे उस दिन शिवरात्रि थी। रात्रिके समय उसने वनमें एक शिवमन्दिर देखा। वह भीतर गया। उसने देखा कि शिवलिंगके ऊपर स्वर्णका छत्र टँगा हुआ है। अत: वह उस छत्रको उतारनेके लिये शिवलिंगपर चढ़ गया। इसने अपने-आपको मेरे अर्पण कर दिया—ऐसा मानकर भगवान् शंकर उसके सामने प्रकट हो गये।

एक कुतिया खरगोशको मारनेके लिये उसके पीछे भागी। खरगोश भागता-भागता एक शिवमन्दिरके भीतर घुस गया। वहाँ वह शिवलिंगकी परिक्रमामें भागा तो आधी परिक्रमामें ही कुतियाने खरगोशको पकड़ लिया। शिवलिंगकी आधी परिक्रमा हो जानेसे उस खरगोशकी मुक्ति हो गयी।

भगवान् शंकर बहुत सीधे-सरल हैं। भस्मासुरने उनसे यह वरदान माँगा कि मैं जिसके सिरपर हाथ रखूँ, वह भस्म हो जाय तो शंकरजीने उसको वरदान दे दिया। अब पार्वतीको पानेकी इच्छासे वह उलटे शंकरजीके ही सिरपर हाथ रखनेके लिये भागा। तब भगवान् विष्णु उन दोनोंके बीचमें आ गये और भस्मासुरको रोककर बोले कि कम-से-कम पहले परीक्षा करके तो देख लो कि शंकरका वरदान सही है या नहीं! भस्मासुरने विष्णुकी मायासे मोहित होकर अपने सिरपर हाथ रखा तो वह तत्काल भस्म हो गया। इस प्रकार सीधे-सरल होनेसे शंकर किसीपर सन्देह करते ही नहीं, किसीको जानना चाहते ही नहीं, नहीं तो वे पहले ही भस्मासुरकी नीयत जान लेते।

भगवान् शंकरसे वरदान माँगना हो तो भक्त नरसीजीकी तरह माँगना चाहिये, नहीं तो ठगे जायँगे। जब नरसीजीको भगवान् शंकरने दर्शन दिये और उनसे वरदान माँगनेके लिये कहा, तब नरसीजीने कहा कि जो चीज आपको सबसे अधिक प्रिय लगती हो, वही दीजिये। भगवान् शंकरने कहा कि मेरेको कृष्ण सबसे अधिक प्रिय लगते हैं, अत: मैं तुम्हें उनके ही पास ले चलता हूँ। ऐसा कहकर भगवान् शंकर उनको गोलोक ले गये। तात्पर्य है कि शंकरसे वरदान माँगनेमें अपनी बुद्धि नहीं लगानी चाहिये।

शंकरकी प्रसन्नताके लिये साधक प्रतिदिन आधी रातको (ग्यारहसे दो बजेके बीच) ईशानकोण (उत्तर-पूर्व)-की तरफ मुख करके **'ॐ नमः शिवाय'** मन्त्रकी एक सौ बीस माला जप करे। यदि गंगाजीका तट हो तो अपने चरण उनके बहते हुए जलमें डालकर जप करना अधिक उत्तम है। इस तरह छ: मास करनेसे भगवान् शंकर प्रसन्न हो जाते हैं और साधकको दर्शन, मुक्ति, ज्ञान दे देते हैं।

योगिराज शिवका सौन्दर्य

(श्रीशरदजी अग्रवाल, एम०ए०)

जय शिव शंकर औघड़ दानी।
बारम्बार नमन वरदानी॥
हिम शिखरों पर तुम्हरा डेरा।
साँझ-सबेरे करते फेरा॥
चहुँदिश फैली है हिमरासी।
खिली चाँदनी हरे उदासी॥
श्वेत धवल सलोनी काया।
कटिपर बाघम्बर अति भाया॥
सिर पर सुन्दर जटा विराजे।
भस्म त्रिपुण्ड्र भाल पर राजे॥

अर्द्धनिमीलित नयन निराले।
कानों में दो कुण्डल प्यारे॥
शीश सुहाये शीतल चन्दा।
अंग सजे हैं नाग भुजंगा॥
तन की मस्ती अजब निराली।
स्मित मुख-मुद्रा मनहारी॥
शोभित श्रीशिव योगी-भूपा।
पद्मासन में रूप अनूपा॥
प्रणव जपें नित प्रणव स्वरूपा।
नाम अनादि अनन्त अरूपा॥

उपनिषदोंमें आये कतिपय आख्यान

(डॉ० श्री के० डी० शर्माजी)

परब्रह्म परमात्मा आनन्दमय है—तैत्तिरीयोपनिषद्‌की ब्रह्मानन्दवल्लीके अष्टम अनुवाकमें आनन्द-सम्बन्धी मीमांसा (विचार) करते हुए यह भाव दिखाया गया है कि मानव-लोकका सबसे महान् आनन्द परब्रह्म परमात्माके आनन्दकी तुलनामें अत्यन्त ही तुच्छ है। बृहदारण्यकोपनिषद् (४।३।३२)-में भी कहा गया है कि 'समस्त प्राणी परमात्मासम्बन्धी आनन्दके किसी एक अंशको लेकर ही जीते हैं। तैत्तिरीयोपनिषद्‌की भृगुवल्लीमें महर्षि वरुण अपने पुत्र भृगुको उपदेश देते हैं कि 'ये सब प्रत्यक्ष दीखनेवाले प्राणी जिससे उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जिसके सहारे जीवित रहते हैं तथा अन्तमें इस लोकसे प्रयाण करते हुए जिसमें प्रवेश करते हैं, जिसको तत्त्वसे जाननेकी इच्छा करते हैं, वही ब्रह्म है।' भृगुने निरन्तर तप करते हुए क्रमशः यह निश्चित किया कि 'अन्न ब्रह्म है, प्राण ब्रह्म है, मन ब्रह्म है, विज्ञान ब्रह्म है।' अन्तमें भृगुने निश्चयपूर्वक जाना कि 'सचमुच आनन्द ही ब्रह्म है; क्योंकि आनन्दसे ही ये समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर आनन्दसे ही जीते हैं और इस लोकसे प्रयाण करते हुए अन्तमें आनन्दमें ही प्रविष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार जाननेपर भृगुको परब्रह्मका पूर्ण ज्ञान हो गया कि परब्रह्म परमात्मा आनन्दस्वरूप है।' तै०उ० (२।४, २।९)-में कहा गया है कि ब्रह्मके आनन्दमय स्वरूपको जान लेनेवाला विद्वान् कभी भयभीत नहीं होता है। तै०उ० (२।७)-के अनुसार 'परब्रह्म परमात्मा रसस्वरूप (आनन्दमय) है। यह जीवात्मा इस रसको प्राप्त करके ही आनन्दयुक्त होता है। यदि आकाशकी भाँति व्यापक आनन्दस्वरूप परमात्मा न होता तो कौन जीवित रह सकता और कौन प्राणोंकी चेष्टा कर सकता? निःसन्देह यह परमात्मा ही सबको आनन्द प्रदान करता है।' अतः मनुष्यको यह दृढ़तापूर्वक विश्वास करना चाहिये कि इस जगत्‌के कर्ता-हर्ता परब्रह्म परमेश्वर अवश्य हैं और वे ही समस्त प्राणियोंको पूर्णानन्द, नित्यानन्द, अखण्डानन्द और अनन्त आनन्द प्रदान करते हैं। अतः ब्रह्मसूत्र (१।१।१२)-में कहा गया है कि '**आनन्दमयोऽभ्यासात्**' अर्थात् श्रुतिमें बारम्बार 'आनन्द' शब्द परब्रह्म परमात्माके लिये प्रयुक्त हुआ है। अतः 'आनन्दमय' शब्द परब्रह्मका ही वाचक है।

महर्षि आरुणिका पुत्र श्वेतकेतुको उपदेश ('तत्त्वमसि')—छान्दोग्योपनिषद्‌के षष्ठ अध्यायमें 'सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित आत्माका एकत्व' समझानेके लिये पिता और पुत्रकी आख्यायिका दी गयी है। महर्षि आरुणि अपने पुत्र श्वेतकेतुको उपदेश देते हैं कि 'जिसके द्वारा अश्रुत (बिना सुना हुआ) श्रुत (सुना हुआ) हो जाता है, अमत (बिना विचार किया हुआ) मत (विचार किया हुआ) हो जाता है और अविज्ञात (अनिश्चित) विज्ञात (निश्चित) हो जाता है, वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतो! 'तत्त्वमसि' अर्थात् वह परब्रह्म परमात्मा तू ही है।' यहाँ श्रुतिका भाव यह है कि जब कारणरूप माया और कार्यरूप देहके विकारकी निवृत्ति हो जाती है, तब जीव ब्रह्म ही हो जाता है। जिस प्रकार मिट्टीके पिण्डद्वारा मिट्टीके सम्पूर्ण पदार्थोंका ज्ञान हो जाता है कि मिट्टीके सम्पूर्ण पदार्थोंके नाम तो केवल वाणीके विकार हैं, सत्य तो केवल मृत्तिका (मिट्टी) ही है, उसी प्रकार सत्‌से उत्पन्न हुआ यह सत्स्वरूप सम्पूर्ण जगत् सन्मात्र ही है। '**तत्त्वमसि**' इस वाक्यमें 'तत्' पद ईश्वरकी उपाधि 'माया' और 'त्वम्' पद जीवकी उपाधि 'अन्तःकरण'—इन दोनोंसे रहित शुद्ध चैतन्य अंशकी एकता कही गयी है अर्थात् जो प्रकृतिसे परे और वाणीका विषय नहीं है, निर्मल ज्ञानचक्षुओंसे जाना जा सकता है तथा शुद्ध चैतन्यघन अनादि है, तुम वही ब्रह्म हो—ऐसी भावना अपने अन्तःकरणमें करनेमें परमात्माकी अनुभूति होती है। 'तत्त्वमसि' यह वेदान्त-महावाक्य है, जो जीव तथा ब्रह्मकी एकताका बोधक है।

इन्द्र-विरोचन-आख्यायिका—छान्दोग्योपनिषद्‌के

अष्टम अध्यायके सप्तम खण्डमें वर्णन है कि प्रजापतिने कहा कि 'जो आत्मा पापशून्य, जरारहित, मृत्युहीन, विशोक, क्षुधारहित, पिपासारहित, सत्यकाम और सत्यसंकल्प है, उसका अन्वेषण करना चाहिये अर्थात् उसका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। देवताओंके राजा इन्द्र और असुरोंके राजा विरोचन दोनोंने ही परम्परासे प्रजापतिकी बातको जान लिया तथा प्रजापतिके पास जाकर बत्तीस वर्षतक ब्रह्मचर्यवास किया। तत्पश्चात् विरोचन बिना ज्ञान प्राप्त किये ही वापस आ गया परंतु इन्द्रने प्रजापतिके यहाँ एक सौ एक वर्ष ब्रह्मचर्यवास किया। तत्पश्चात् प्रजापतिने इन्द्रको उपदेश दिया कि 'हे इन्द्र! वायु, विद्युत्, अभ्र (मेघ) और मेघध्वनि—ये सब अशरीर हैं। जिस प्रकार ये सब आकाशसे समुत्थानकर सूर्यकी परम ज्योतिको प्राप्त हो अपने स्वरूपमें परिणत हो जाते हैं, उसी प्रकार यह सम्प्रसाद (जीव) इस शरीरसे समुत्थान कर देहात्मभावनाका त्यागकर अपने स्वाभाविक स्वरूपमें स्थित हो जाता है। जो ऐसा अनुभव करता है कि मैं देखूँ, सूँघूँ, शब्द बोलूँ, श्रवण करूँ और मनन करूँ, वह आत्मा है एवं मन आत्माका दिव्य चक्षु है।' इस प्रकारसे चिन्तन, मनन तथा निदिध्यासन (आत्मचिन्तन) करनेसे परमात्माकी अनुभूति होती है।

देवर्षि नारद-सनत्कुमार-आख्यायिका—छान्दोग्योपनिषद्के सप्तम अध्यायमें आख्यायिका है कि सर्वविद्यासम्पन्न देवर्षि नारद अनात्मज्ञ होनेके कारण शोक करते हुए सनत्कुमारजीके पास जाकर कहते हैं कि 'मैं मन्त्रवेत्ता हूँ, आत्मवेत्ता नहीं हूँ। आप मुझे उपदेश दें।' सनत्कुमारजी नाम, वाक्, मन, संकल्प, चित्त, ध्यान आदिको उत्कृष्टतर बताते हुए 'भूमा' का उपदेश देते हैं कि 'जहाँ कुछ और नहीं देखता, कुछ और नहीं सुनता तथा कुछ और नहीं जानता, वह भूमा है। जो भूमा है, वही अमृत है। भूमा ही नीचे है, वही ऊपर है, वही आगे है, वही दायीं ओर है, वही बायीं ओर है और वही यह सब है।' आत्मरूपसे भी 'भूमा' का आदेश किया जाता है। इस प्रकार देखनेवाला, मनन करनेवाला तथा विशेषरूपसे इस प्रकार जाननेवाला साधक आत्मरति, आत्मक्रीड और आत्मानन्द होता है तथा वह न तो मृत्युको देखता है, न रोगको और न ही दुःखको। वह आत्मरूप ही देखता है।' अन्तमें सनत्कुमारजी नारदजीको उपदेश देते हैं—

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः। (छा०उ० ७। २६। २)

आहार शुद्ध होनेपर अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार)-की शुद्धि होती है, अन्तःकरणकी शुद्धि होनेपर निश्चल स्मृति होती है तथा स्मृतिकी प्राप्ति होनेपर हृदयमें स्थित सम्पूर्ण ग्रन्थियों (राग-द्वेष, मोह आदि दोषों)-का विनाश हो जाता है। ज्ञानेन्द्रियोंद्वारा हम जो कुछ भी ग्रहण करते हैं, वह सब आहार है। अतः ज्ञानेन्द्रियों (श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, नासिका)-के विषय (तन्मात्राएँ) शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध शुद्ध एवं सात्त्विक होनेसे ही परमात्माकी अनुभूति होती है।

प्रजापतिद्वारा 'द-द-द' से दम-दान और दयाका उपदेश—बृहदारण्यकोपनिषद्के पंचम अध्यायके द्वितीय ब्राह्मणमें कहा गया है कि देव, मनुष्य और असुर—प्रजापतिके इन तीन पुत्रोंने प्रजापतिके यहाँ ब्रह्मचर्यवास करनेके पश्चात् प्रजापतिसे उपदेश देनेकी प्रार्थना की। प्रजापतिने इन सभीको 'द' अक्षरका उपदेश दिया। प्रजापतिके इस अनुशासनकी मेघगर्जनारूपी दैवी वाक् आज भी द-द-द—इस प्रकार अनुनाद करती है अर्थात् भोगप्रधान देवो! इन्द्रियोंका 'दमन' करो, संग्रहप्रधान मनुष्यो! भोगसामग्रीका 'दान' करो, क्रोध-हिंसाप्रधान असुरो! जीवोंपर 'दया' करो। अतः दम, दान और दया—इन तीनों सद्गुणोंको आचरणमें लानेसे परमात्माकी अनुभूति होती है। तै०उ० (१। ११)-के अनुसार '**श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयादेयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्।** अर्थात् श्रद्धापूर्वक दान देना चाहिये, अश्रद्धापूर्वक नहीं देना चाहिये, आर्थिक स्थितिके अनुसार देना चाहिये, लज्जासे देना चाहिये, भगवान्‌के भयसे देना चाहिये तथा विवेकपूर्वक निष्काम भावसे दान देना चाहिये।

'अहो पथिक कहियो उन हरि सौं...'

(श्रीअर्जुनलालजी बन्सल)

श्रीवृषभानुभवनका सौन्दर्य तीनों लोकोंमें आकर्षणका केन्द्र बन गया है। इसमें निवास करनेवाली भगवान् श्रीकृष्णकी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधारानीके दर्शन करने देवलोकसे देववधुएँ गोपीरूप धारणकर नित्य ही इनके पास आया करती हैं। श्रीराधारानीके साथ हास-परिहासके उन क्षणोंमें उन्हें सुखद अनुभूतिका अनुभव होता था, परंतु आज उस भवनमें प्रवेश करते ही उन देवांगनाओंको उदासीकी बयार बहती दिखायी पड़ी। श्रीराधारानीके कक्षके समीप आते उन देववधुओंकी पायलके घुँघरू और गलेमें धारण की गयी मालाके मोती स्वतः ही टूटकर आँगनमें बिखर गये। देवांगनाओंने देखा, श्रीराधारानीका कक्ष भी शान्त है, दीपकके उजियारेमें भी अन्धकारकी झलक दिखायी दे रही थी। उन्होंने निकट जाकर देखा, दीपक में तेल भी है, बाती भी है, परंतु वह जीवन्त नहीं है। सहसा ही उन्होंने देखा, श्रीराधारानीकी नित्य संगिनी सखियाँ एक-एक कर उनके कक्षमें प्रवेश करने लगी हैं। आज उनकी भी पायलके घुँघरू शान्त हैं, उनका शृंगार भी मलिन है, मुखमण्डलका तेज भी लुप्तप्राय हो गया है। चारों ओर फैली नीरवता आज कुछ अप्रिय सन्देश दे रही है। देववधुएँ इसका कारण समझनेका प्रयास करने ही लगी थीं कि झरोखेके समीप विराजी श्रीराधारानीके नयनोंमें मोती-जैसे अश्रुबिन्दुओंकी झलक दिखायी पड़ी। उन्होंने सहज भावसे ललिता सखीसे संकेत कर पूछा!

सुनै हैं स्याम मधुपुरी जात।
सकुचनि कहि न सकत काहू सौं, गुप्त हृदय की बात॥
संकित बचन अनागत कोऊ, कहि जु गयौ अधरात।
नींद न परै, घटै नहिं रजनी कब उठि देखौं प्रात॥
नंदनंदन तो ऐसै लागे, ज्यौं जल पुरइनि पात।
सूर स्याम संग तै बिछुरत हैं, कब ऐहैं कुसलात॥

(सूरसागर)

री सखी, मैने सुना है, श्रीश्यामसुन्दर ब्रज छोड़कर मथुरा जा रहे हैं, अपनी यह पीड़ा संकोचवश मैं किसीसे कह भी नहीं सकती। आज अर्द्धरात्रिके समय न जाने किसने आकर मुझे यह समाचार सुनाया। बस, उसी समयसे जागती हुई प्रभात होनेकी प्रतीक्षा करने लगी। मनमें मिलनकी लालसा लिये जल और कमल पुष्पोंका उदाहरण देते हुए कहने लगी, हे सखी! अब हम उनसे बिछुड़ तो गये परंतु कोई यह तो बता दे कि हमारा और उनका पुनर्मिलन कब होगा?

श्रीराधाजीके मनकी वेदनाको आत्मसात् करते हुए एक सखी सान्त्वना देते हुए कहने लगी, हे सखी, वे जा नही रहे, मथुरा जा चुके हैं,—

कहा परदेसी कौ पतियारौ।
प्रीति बढ़ाइ चले मधुवन कौं, बिछुरि दियौ दुख भारौ॥
ज्यौं जल हीन मीन तरफत, त्यौं व्याकुल प्रान हमारौ।
सूरदास प्रभुके दरसन बिनु, दीपक मौन अँधियारौ॥

परदेशीसे प्रीत कैसी? उनपर विश्वास करना भी उचित नहीं। वे तो हमसे प्रेम करके मथुरा चले गये और हमें वियोगके महासागरमें डूबनेको छोड़ गये। जलके बिना जैसे मछली तड़पती है, वैसे ही श्रीकृष्णके बिना हमारे प्राण व्याकुल हो रहे हैं। हमें तो इस समय ऐसा आभास हो रहा है कि भवनमें छाया यह अन्धकार उनके विरहका ही परिणाम है।

इस सखीके मनोभावोंसे द्रवित होकर विसाखा कहने लगी,

नाथ अनाथन की सुधि लीजै।
गोपी ग्वाल गाइ, गो-सुत सब,दीन मलीन दिनहिं दिन छीजै॥
नैननि जलधारा बाढ़ी अति, बूड़त ब्रज किन कर गहि लीजै।
इतनी विनती सुनौ हमारी, बारकहूँ पतियाँ लिखि दीजै॥
चरन कमल दरसन नव नौका, करुणासिन्धु जगत जस लीजै।
सूरदास प्रभु आस मिलन की, एक बार आवन ब्रज कीजै॥

हे स्वामी! हम दीन-हीन अपनी सखियोंकी सुधि लेने तो आ जाना। तुम्हारे ब्रजमें तुम्हारे ग्वालबाल,

गोप-गोपियाँ, गौएँ और बछड़े सब दुर्बल हो रहे हैं। हे माधव! तुम तो शीघ्र ही लौट आनेका आश्वासन देकर गये थे परंतु बहुत लम्बा समय व्यतीत हो गया परंतु तुम नहीं आये।

श्रीकृष्णके आनेकी प्रतीक्षामें एक दिन समस्त गोपियाँ यमुना तटपर बैठ भावसमाधिमें लीन हो कान्हाको सम्बोधितकर कहने लगीं—रे मोहन,

ब्रज लौट चलो रे लाला, लौट चलो॥
सूनी कदम्ब की ठण्डी छैंया, खोजे धुन वंशी की।
व्याकुल होके ब्रज न डुबा दें, लहरें जमुनाजी की॥
दूध दही की भरी मटकियाँ, तोड़े कौन मुरारी।
अँसुअन जल से भरे गगरिया पनघट पै पनिहारी॥
विकल हो रही मात यशोदा, नंदजी दुःख में खोये।
कुछ तो सोच अरे निर्मोही, ब्रज का कण कण रोये॥
तेरे विरह में राधा रोवे, रोवैं ग्वाल और बाल।
खोई खोई फिरें रे गइयाँ, गोपी भूली ताल॥
भूले बिसरे उड़े रे पक्षी, रोती फिरैं ब्रजनार।
सूख गई हैं ताल तलैया, सूखी कदम्ब की डार॥
गोपी ग्वाल बाल सब रोवैं, अँखियन बहे है नीर।
तड़पत रोवत फिरे रे राधा इकली जमुना तीर॥

हे मोहन, तुम्हारे विरहमें ब्रजकी कैसी दयनीय दशा हो गयी है, यह तो तुम जान ही गये। हे कान्हा! श्रीराधारानीकी व्यथा हमसे देखी नहीं जाती। एक दिनकी बात है, ये ब्रजगोपियाँ यमुनातटपर श्रीकृष्णके विरहमें उदास बैठी थीं, उन्होंने देखा सामने ही पगडण्डीपर एक युवक घोड़ेपर सवार हो मथुराकी ओर जानेके लिये आ रहा है, एक सखीने उसे रोककर कहा, ***'अहो पथिक कहियो उन हरि सौं भई बिरह ब्रज नारी।'*** और इस ब्रजमें श्रीराधारानी तो लगभग पागल ही हो गयी हैं। उस पथिकने देखा, उन सब सखियोंकी आँखोंमें अश्रुधारा पलकोंका बाँध तोड़कर मुखमण्डलपर बह रही थी, उनमेंसे एक सखीने उस पथिकसे पुनः कहा, हे युवक! तुम हमारे ब्रजराजसे मिलकर कहना, श्रीराधारानी, रात-दिन तुम्हारा स्मरणकर रोती रहती हैं, कभी वे कालिन्दीसे पूछती हैं, यहाँ मेरे श्यामसुन्दर आये थे क्या? कभी वंशीवटसे पूछती हैं, तेरी शीतल छायामें खड़े होकर मेरे मोहनने वंशीवादन किया था क्या? कभी सरोवरमें खिले कमलपुष्पोंसे पूछती हैं, क्या तुम्हारा सौन्दर्य निहारने मेरे प्रियतम आये थे? कभी गोपियोंके घरोंमें तो कभी नन्दभवनमें जाकर मैयासे पूछती हैं, हे यशोदा मैया! तुमने मेरे माखनचोर कान्हाको देखा है?

सखियोंके मुखसे उनकी ऐसी व्यथा-कथा सुनकर उस पथिकने मथुरा पहुँचकर श्रीकृष्णके पास जाकर सारा हाल कह सुनाया, जिसे सुनकर वे व्यथित हो उठे। उन्होंने उन ब्रजगोपियोंको सान्त्वना देने उद्धवजीको ब्रज भेजा।

श्रीसरस्वती-स्तुति

(डॉ० श्रीमनोजकुमारजी तिवारी 'तत्त्वदर्शी')

जय-जय स्वर जननी, शुभ मति करणी, जय माँ परम पुनीता।
जय-जय वागीशा, जयति पुरीशा, जय-जय-जय शुभमीता॥
जय-जय महतारी, शुभ संचारी, विनत शीश पद कंजा।
जय मातु दयाला, हृदय विशाला, जय जननी मद भंजा॥
तव आश्रित माता, पद जलजाता लीन हृदय नर-नारी।
कीजै अनुकम्पा, विनय निशंका, हो माँ मति अविकारी॥
श्वेताम्बुज आसन, दिव्य शुभासन, महा-मोह-तम हंता।
माँ हंस-विहारिणि, हृद-तम हारिणि, फटिक माल कर ग्रन्था॥
निर्मल शुभ वचना, शुभ सुवसना, विनय करूँ कर जोरी।
हो अम्ब विमल मति, हो माँ शुभ गति, हों पावन संसारी॥
माँ धवल मनोहर रूप सरोवर, हम बालक अज्ञानी।
हे देवि सुरेश्वरि, हे सर्वेश्वरि, करो कृपा कल्याणी॥
सुर, नर, मुनि, ज्ञानी, ध्यावें प्राणी, वर दे मातु सुदानी।
वाणी, मति निर्मल, कर उर विह्वल, हर 'मनोज', तम प्राणी॥
बन जन 'तत्त्वदर्शी', मार्ग प्रदर्शी, बनें सृष्टि हितकारी।
जागृत हो प्रज्ञा, ऊर्जित संज्ञा, बुद्धि सृष्टि उपकारी॥

करूँ समर्पित माँ तुम्हें, हृदय-भावना-हार।
अर्पित अक्षर पुष्प यह, स्वीकृति ही उपहार॥
भवबन्धन कट जाय, पर नेह-बन्ध हो गाढ़।
हो वीणा-सुर-तार में, बन्धन-हृदय प्रगाढ़॥

बसन्त-पंचमीपर विशेष—

मानसमें माँ सरस्वतीकी महिमा

(श्रीराजकुमारजी अरोड़ा)

माँ सरस्वती (शारदा) वाणीकी देवी हैं, वैदिक एवं पौराणिक वाङ्मयमें उनकी महती महिमाका समारोहपूर्वक वर्णन हुआ है। अनेक विद्वानोंका मत है कि सर्वप्रथम सरस्वती देवीका आवाहन करना चाहिये और उसके पश्चात् गणेशजीका। यह बात सत्य इसलिये लगती है कि गणेशजीको वाणीद्वारा ही पुकारा जायगा। गणेशजीकी पूजा, अर्चना, वन्दना, स्तुति करनेके लिये भी तो वाणीकी ही आवश्यकता है। वाणीके बिना गणेशजीकी स्तुति सम्भव नहीं है। और न ही किसी अन्य देवी-देवताकी स्तुति सम्भव है, हिन्दू जनमानसके कण्ठहार श्रीरामचरितमानसमें तो गोस्वामीजीने पदे-पदे माँ शारदाका पावन-स्मरण किया है। उनमेंसे कतिपय स्थलोंका यहाँ दिग्दर्शन कराया जा रहा है—

(१) श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने पहले सरस्वती-जीकी तत्पश्चात् गणेशजीकी वन्दना की है। इस सन्दर्भमें श्रीरामचरितमानसके पहले काण्ड (बालकाण्ड)-का सर्वप्रथम श्लोक द्रष्टव्य है—

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ॥

अर्थात् अक्षरों, अर्थसमूहों, रसों, छन्दों और मंगलोंकी करनेवाली सरस्वतीजी और गणेशजीकी मैं वन्दना करता हूँ।

(२) रावण, कुम्भकर्ण तथा विभीषण तीनों भाइयोंके उग्र तपसे प्रसन्न होकर जब ब्रह्माजी वरदान देनेके लिये कुम्भकर्णके सामने आते हैं तो उसकी विशाल काया देखकर असमंजसमें पड़ जाते हैं, सोचते हैं अगर यह दुष्ट नित्य आहार करेगा, तो संसार ही उजड़ जायगा।

ऐसा विचारकर ब्रह्माजीने सरस्वतीको प्रेरणा करके उसकी बुद्धि फेर दी, जिससे उसने छः महीनेकी नींद माँगी।

सारद प्रेरि तासु मति फेरी। मागेसि नींद मास षट केरी॥

(रा०च०मा० २।२१७।४)

(३) अयोध्यामें रामजीका राजतिलक होना है, सभी तरहकी तैयारी हो चुकी है, देवताओंने माता सरस्वतीका आवाहन किया और सरस्वतीजी महारानी कैकेयीकी मन्थरा नामक दासीकी जीभपर विराजमान होकर उसी रातको ही सारी योजनाको मटियामेट कर गयीं—

नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि॥

(रा०च०मा० २।१२)

(४) जिस समय रामजीको वनवास हुआ। भरतजी ननिहाल गये हुए थे। गुरु वसिष्ठजीके बुलानेपर जब वे वापस आये तो महाराज दशरथका प्राणान्त हो चुका था। कारण रामजीका बिछुड़ना और मूलकारण भरतकी माताद्वारा रामका वनवास तथा भरतका राजतिलक इन दोनों वरदानोंका माँगना और महाराज दशरथका प्राणोंसे अधिक वचनका महत्त्व प्रमाणित करना। भरतजी तो रामजीके प्राण हैं और रामजी भरतजीके प्राण। उन्होंने पिताकी मृत्यु और रामवनगमनमें स्वयंको कारण मानते हुए सारी सेना, गुरुजनों, माताओं, परिजनों, पुरजनोंसहित रामके राजतिलककी पूरी तैयारीके साथ वनको प्रस्थान किया। यह देख देवताओंने पुनः सरस्वतीका आवाहन करके भरतकी बुद्धिको फेरना चाहा, परंतु इस बार देवताओंकी विनतीको माँ शारदाने ठुकरा दिया। वे भरतकी भक्तिके आगे पराजित हो गयीं।

देवताओंने सरस्वतीजीका स्मरणकर उनकी सराहना (स्तुति) की और कहा—हे देवि! देवता आपके शरणागत हैं, उनकी रक्षा कीजिये। अपनी माया रचकर भरतजीकी बुद्धिको फेर दीजिये और छलकी छायाकर देवताओंके कुलकी रक्षा कीजिये। देवताओंकी विनती सुनकर और देवताओंको स्वार्थके वश होनेसे मूर्ख जानकर बुद्धिमती सरस्वतीजी बोलीं—मुझसे कह रहे हो कि भरतकी मति पलट दो! हजार नेत्रोंसे भी तुमको

सुमेरु नहीं सूझ पड़ता!

ब्रह्मा, विष्णु और महेशकी माया बड़ी प्रबल है, किंतु वह भी भरतजीकी बुद्धिकी ओर ताक नहीं सकती। उस बुद्धिको तुम मुझसे कह रहे हो कि भोली कर दो (भुलावेमें डाल दो)! अरे! चाँदनी कहीं प्रचण्ड किरणवाले सूर्यको चुरा सकती है?

भरतजीके हृदयमें सीतारामजीका निवास है, जहाँ सूर्यका प्रकाश है, वहाँ कहीं अँधेरा रह सकता है? ऐसा कहकर सरस्वतीजी ब्रह्मलोकको चली गयीं। देवता ऐसे व्याकुल हुए, जैसे रात्रिमें चकवा व्याकुल होता है।

सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही। देबि देव सरनागत पाही॥
फेरि भरत मति करि निज माया। पालु बिबुध कुल करि छल छाया॥
बिबुध बिनय सुनि देबि सयानी। बोली सुर स्वारथ जड़ जानी॥
मो सन कहहु भरत मति फेरू। लोचन सहस न सूझ सुमेरू॥
बिधि हरि हर माया बड़ि भारी। सोउ न भरत मति सकइ निहारी॥
सो मति मोहि कहत करु भोरी। चंदिनि कर कि चंडकर चोरी॥
भरत हृदयँ सिय राम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू॥
अस कहि सारद गइ बिधि लोका। बिबुध बिकल निसि मानहुँ कोका॥

(रा०च०मा० २।२९५।१—८)

(५) जब हनुमान्‌जीने अशोकवाटिकाका विध्वंस करते हुए रावणपुत्र अक्षयकुमार तथा अन्य बड़े-बड़े योद्धाओंको मार दिया तो रावणने अत्यन्त बलशाली अपने बेटे मेघनादको यह आदेश दे करके भेजा कि बन्दरको मारना नहीं, बाँधकर ले आना, देखें, वह बन्दर कहाँका है! मेघनाद तथा अन्य योद्धाओंके साथ हनुमान्‌जीका युद्ध हुआ तथा प्राणपर संकट आते देख मेघनादने हनुमान्‌जीपर ब्रह्मास्त्र छोड़ा, ब्रह्माजीकी महान् महिमाका मान रखते हुए हनुमान्‌जी गिरे तथा मूर्च्छित हो गये, तब मेघनाद हनुमान्‌जीको नागपाशमें बाँधकर ले गया। हनुमान्‌जीको दण्ड देनेके लिये रावणने कहा कि इस मूर्ख बन्दरके प्राण ही शीघ्र क्यों न हर लिये जायँ। सुनते ही राक्षस मारने दौड़े तो विभीषणजीने कहा कि ये हनुमान्‌जी तो रामके दूत हैं, अतः इन्हें मारना नीतिके विरुद्ध है। कोई और दण्ड सोचा जाय। अब सरस्वतीजी रावणकी जिह्वापर विराजमान होती हैं और रावण कहता है कि बन्दरको अंग-भंगकर लौटा दिया जाय।

कपि कें ममता पूँछ पर सबहि कहउँ समुझाइ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ॥

(रा०च०मा० ५।२४)

जब बिना पूँछका यह बन्दर वहाँ जायगा, तब यह मूर्ख अपने मालिकको साथ ले आयेगा। जिनकी इसने बहुत बड़ाई की है, मैं जरा उनकी प्रभुता (सामर्थ्य) तो देखूँ!

यह वचन सुनते ही हनुमान्‌जी मनमें मुसकराये और मन-ही-मन बोले कि मैं जान गया, सरस्वतीजी इसे ऐसी बुद्धि देनेमें सहायक हुई हैं—

बचन सुनत कपि मन मुसुकाना। भइ सहाय सारद मैं जाना॥

(रा०च०मा० ५।२४।२)

पूँछमें तो आग क्या लगनी थी। पूरी लंका ही जलकर खाक हो गयी। केवल एक विभीषणका घर ही नहीं जला। रावण तथा सभी लंकावासी उस आगसे अत्यन्त भयभीत हो गये। यह सब भगवती शारदाकी ही महिमा थी।

भगवती सरस्वतीकी महिमा अगाध है, इस लघु आलेखमें इसका संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया गया है। गोस्वामीजी तो कहते हैं—

पुनि बंदउँ सारद सुरसरिता। जुगल पुनीत मनोहर चरिता॥
मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत एक हर अबिबेका॥

अर्थात् अब मैं शारदा (सरस्वतीजी) और देवनदी (गंगाजी)-की वन्दना करता हूँ। दोनों पवित्र और मनोहर चरित्रवाली हैं। एक (गंगाजी) स्नान करने और जल पीनेसे पापोंको हरती हैं और दूसरी [काव्यरूपी शारदा हरियश कथनादिसे] अविवेक (अज्ञान) हर लेती हैं।

भगवती शारदा तो साक्षात् ब्रह्मविद्या हैं, उन्हींकी कृपासे सन्त-समाज ब्रह्मविचारका प्रचार करता रहता है—*'सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा॥'*

आध्यात्मिक कहानी—

उसने क्या कहा ?

(पं० श्रीईश्वरचन्द्रजी तिवारी)

आज मैंने उसको गाँवके बाहर पाकड़के वृक्षके नीचे पड़े देखा। गुदड़ी उसके सिरके नीचे थी और फटी पगनियाँ बगलमें। मेरी जिज्ञासा स्फुरित हुई। केवल कुतूहलवश ही मैं उसकी ओर चल पड़ा। यों तो वह किसीको अपने पास आते देखकर उठकर चल देता था; परंतु आज वह शान्त था। मैं उसके समीप पहुँच गया।

वह कोढ़ी थोड़े-थोड़े समयके अन्तरपर अपना सारा शरीर खुजाने लगता; उसके शरीरकी तीव्र दुर्गन्ध बरबस ही नासिकामें प्रवेश कर रही थी। मेरी आँखें उसकी गुदड़ीपरके चिल्लुओंको देखनेमें व्यस्त थीं।

मेरे वहाँ जानेसे उसके सहज कार्यक्रममें तनिक भी बाधा नहीं आयी। वह एक ईंटके टुकड़ेसे खेल रहा था। केवल शरीरपर भिनभिनानेवाली मक्खियाँ बीच-बीचमें उसके शरीरको एकबारगी ही हिला देती थीं।

मैंने उसके मुखपर एक अनोखी शान्ति और आभा देखी। यद्यपि उसके कपड़ोंकी बूसे नाक फटी जाती थी; परंतु फिर भी न मालूम किसने मुझे बैठ जानेको प्रेरित किया और मैं बैठ गया।

मैं उसका परिचय पूछनेवाला ही था कि वह हँसा और उसने मेरी ओर दृष्टि फेरी। वैसे तो मैं सभी फकीरों और भिखमंगोंके पीछे कुत्ते लगा दिया करता था, इसमें मुझे मजा भी आता था; परंतु आज मैं उस कोढ़ीके सामने करबद्ध बैठा था। मुखसे बोलनेकी चेष्टा करनेपर भी कोई शब्द न निकला। मेरा मस्तक कुछ झुक गया—आँखोंकी पलकें नीची हो गयीं।

वह उसी प्रकार पड़ा रहा। मैं भी आरामसे बैठ गया। 'देखो' वह बोला, 'परमात्मा कितना दयालु है?' और ईंटके ढेलेको चकरीकी भाँति घुमाने लगा।

मैं सुन रहा था—

उसने फिर कहा—'उससे जो कोई कुछ चाहता है, उसे वह सब कुछ दे डालता है।'

वह मुझे समझाता गया—'चाहना—अर्थात् प्रार्थना करना, इसका अर्थ है—निवेदन—आत्मनिवेदन। सब प्रकारके उसका बन जाना।'

यही है परमात्माको पानेका अति सुगम सर्वश्रेष्ठ साधन।

जब तुम प्रार्थना करते हो तो भूल जाते हो कि क्या करें। परमात्मासे माँगने लगते हो—और माँगते भी हो वहाँ वह वस्तु, जिसे माँगते तुम्हें शरम आनी चाहिये। जरा सोचो तो, यदि तुम किसी चक्रवर्ती राजाके दरबारमें कभी पहुँचो और उससे एक सड़ी वस्तु—कूड़े-करकटकी याचना करो तो यह उसका उपहास करना ही तो होगा? वह तो महान् शक्तिशाली है, तुम्हें पलभरमें निहाल कर सकता है।

पर जब तुम सबसे बड़े दरबार—परमेश्वरके दरबारमें प्रवेश करते हो, तो वहाँ उसके राज्यकी हीन वस्तुएँ कंचन-वैभव आदि विषय ही क्यों माँगते हो? क्या तुम 'उसकी' दृष्टिमें इतने हीन हो? अथवा क्या तुम्हारी अत्यधिक दीनता और सन्तोष तुम्हें उसका पुत्र माननेका अधिकारी नहीं समझते?

परमेश्वरसे माँगो मत कुछ भी!

तुम्हारी कमीज फटनेके पूर्व और जूते जीर्ण होनेके पहले ही पिताजी तुम्हें ये वस्तुएँ ला देंगे। वे कभी नहीं देख सकते कि उनका लाड़ला आज्ञाकारी पुत्र कभी नंगा अथवा भूखा रहे। तुम्हें जन्म देनेवाला तुम्हारी आवश्यकताओंको उनके उत्पन्न होनेके पूर्व ही जानता है, तुम्हें बतलानेकी आवश्यकता नहीं।

अपनी बिखरी शक्ति बटोर लो—फिर तो परमेश्वर तुम्हें अपने दरबारका मन्त्री चुन लेंगे। माँगो मत।

शीशमकी लकड़ीको तुम कभी चूल्हेमें न पाओगे।

इस मायाके संसारमें कौन है वह, जो तुम्हें उच्च पद प्रदान करेगा?

तुम्हें कोई खोदकर धनराशि देनेवाला नहीं है। 'लो बाबा! यह गठरी ले जाओ' ऐसा कोई न कहेगा। यहाँ सभी अपने-अपने कार्योंमें व्यस्त हैं। तुम्हें स्वयं यह खुदाई अपने-आप करनी होगी।

चिल्लाओ मत; शोर न करो। इससे कुछ न होगा। 'स्लाट'में खोटी इकन्नी डालनेसे टिकट नहीं

निकल सकता।

ध्यान देनेकी बात है—यदि सुबह-शाम ग्रामोफोनमें चाभी दे दी जाय और रेकार्ड बजता रहे, 'हे प्रभु! हे भगवन्! हे दीनदयालो! सर्वजगरक्षक! मेरी विनती सुनो। मैं तुम्हें कितनी देरसे पुकार रहा हूँ, तुम सुनते नहीं, क्या कभी न सुनोगे? तुमने लाखों तारे हैं। हमें भी तार दो···आदि-आदि' तो इससे क्या होगा? ग्रामोफोन स्वयं अपना अथवा संसारका कौन-सा कल्याण कर सकेगा? यह उसकी आत्मा बोलती है अथवा शरीर?

तुम भूल जाते हो, गानेकी नकलमात्र न बनो। प्रार्थना करो—द्रवित हृदयसे।

स्वयं परमात्मामें घुस जाओ, वहाँसे खोद लाओ जितना दामनमें उठा सको। हाथ फैलानेकी क्या आवश्यकता? जितना घुसोगे, उतना ही श्याम-रंगमें रँग जाओगे।

कुएँमें पानी भरने जाओ तो अध-बीचहीसे गगरी न खींच लो। फिर एक प्रश्न यह और है—गगरी भरनी है या स्वच्छ जल चाहिये? स्वच्छ जलके लिये धैर्यपूर्वक कुएँमें रस्सी लगाकर गगरी खींचनी होगी। गगरी तो बरसाती गड्ढेसे भी भरी जा सकती है।

प्रार्थना आलसियोंकी पुकार नहीं है।

वह तो भगवत्-परायण भक्तोंका स्वभाव है।

इतना कहकर उसने मेरी ओर मुख फेरा और प्रश्न किया—'क्या तुम प्रतिदिन प्रार्थना करते हो?'

मैंने लज्जाग्रस्त हो कहा—'नहीं।'

उसने फिर मुझसे परंतु बड़े मधुर भावसे पूछा, 'क्यों भाई?'

मैंने जवाब दिया—'करना तो चाहता हूँ; परंतु शरम लगती है कि कहीं कोई देख लेगा तो क्या कहेगा। 'अभीसे बुढ़ापा आ गया' कहकर लोग मुझे परेशान करेंगे।' मेरी बात सुनकर साधुको बड़ी हँसी आयी। तीन-चार मिनटतक वह लगातार हँसता ही रहा। फिर बोला—'यह तो ऐसी शंका है जैसी कि एक सती नारीको हो सकती है कि····'

मैंने बात काटकर पूछा—'कैसी?'

'कि उसे कोई अपने पतिके पास देख लेगा तो क्या कहेगा? दोषी मन सदा शंकाशील रहता है।' वह फिर हँस पड़ा और उसके शरीरकी मक्खियाँ हवामें मँडराने लगीं।

'मेरे नवयुवक!' उसने कहा—'तुम्हें बतलाया गया है कि तुम क्लर्क होगे, रुपये कमाओगे और घरका पालन करोगे। यदि तुम भूल जाते कि तुम केवल रुपया पैदा करनेकी मशीन हो और यह भी ध्यानमें रखते कि अन्य रुपया पैदा करनेवाली मशीनोंका कुछ भी प्रभाव तुमपर न पड़ेगा तो तुम एक बड़ी निधिके मालिक हो सकते थे और तुम्हें यह शंका भी न होती; परंतु खैर। जाओ, अब भी कोशिश करो। अभी कुछ नहीं बिगड़ा है।

मैंने उसे प्रणाम किया और अपने मकानकी ओर चला आया। बादमें उस साधुको खोजनेका प्रयत्न किया; परंतु सब व्यर्थ!

दुर्जनसे दूर रहें

दुर्जनः प्रियवादी च नैतद्विश्वासकारणम्। मधु तिष्ठति जिह्वाग्रे हृदये तु हलाहलम्॥
दुर्जनः परिहर्त्तव्यो विद्ययालंकृतोऽपि सन्। मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः॥
सर्पः क्रूरः खलः क्रूरः सर्पात् क्रूरतरः खलः। मन्त्रौषधिवशः सर्पः खलः केन निवार्यते॥

दुष्ट व्यक्ति मीठी बातें करनेपर भी विश्वास करनेयोग्य नहीं होता, क्योंकि उसकी जीभपर शहदके ऐसा मिठास होता है, परंतु हृदयमें हलाहल विष भरा रहता है। दुष्ट व्यक्ति विद्यासे भूषित होनेपर भी त्यागनेयोग्य है; जिस सर्पके मस्तकपर मणि होती है, वह क्या भयंकर नहीं होता? साँप निठुर होता है और दुष्ट भी निठुर होता है; तथापि दुष्ट पुरुष साँपकी अपेक्षा अधिक निठुर होता है, क्योंकि साँप तो मन्त्र और औषधसे वशमें आ सकता है, किंतु दुष्टका कैसे निवारण किया जाय? [चाणक्यनीति]

महाशिवरात्रिव्रतकी कथा और माहात्म्य

(आचार्य श्रीरामगोपालजी गोस्वामी, एम०ए०, एल०टी०, साहित्यरत्न, धर्मरत्न)

शिवरात्रिका अर्थ वह रात्रि है, जिसका शिवतत्त्वके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। भगवान् शिवजीकी अतिप्रिय रात्रिको 'शिवरात्रि' कहा जाता है। शिवार्चन और जागरण ही इस व्रतकी विशेषता है। इसमें रात्रिभर जागरण एवं शिवाभिषेकका विधान है।

श्रीपार्वतीजीकी जिज्ञासापर भगवान् शिवजीने बताया कि फाल्गुन कृष्णपक्षकी चतुर्दशी शिवरात्रि कहलाती है। जो उस दिन उपवास करता है, वह मुझे प्रसन्न कर लेता है। मैं अभिषेक, वस्त्र, धूप, अर्चन तथा पुष्पादि समर्पणसे उतना प्रसन्न नहीं होता, जितना कि व्रतोपवाससे—

फाल्गुने कृष्णपक्षस्य या तिथिः स्याच्चतुर्दशी।
तस्यां या तामसी रात्रिः सोच्यते शिवरात्रिका॥
तत्रोपवासं कुर्वाणः प्रसादयति मां ध्रुवम्।
न स्नानेन न वस्त्रेण न धूपेन न चार्चया।
तुष्यामि न तथा पुष्पैर्यथा तत्रोपवासतः॥

ईशानसंहितामें बताया गया है कि फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीकी रात्रिको आदिदेव भगवान् श्रीशिव करोड़ों सूर्योंके समान प्रभावाले लिंगरूपमें प्रकट हुए।

फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि।
शिवलिङ्गतयोद्भूतः कोटिसूर्यसमप्रभः॥

शिवरात्रिव्रतकी वैज्ञानिकता तथा आध्यात्मिकता

ज्योतिषशास्त्रके अनुसार फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी तिथिमें चन्द्रमा सूर्यके समीप होता है। अतः वही समय जीवनरूपी चन्द्रमाका शिवरूपी सूर्यके साथ योग—मिलन होता है। अतः इस चतुर्दशीको शिवपूजा करनेसे जीवको अभीष्टतम पदार्थकी प्राप्ति होती है। यही शिवरात्रिका रहस्य है।

महाशिवरात्रिका पर्व परमात्मा शिवके दिव्य अवतरणका मंगलसूचक है। उनके निराकारसे साकाररूपमें अवतरणकी रात्रि ही महाशिवरात्रि कहलाती है। वे हमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सरादि विकारोंसे मुक्त करके परम सुख, शान्ति, ऐश्वर्यादि प्रदान करते हैं।

चार प्रहरकी पूजाका विधान

चार प्रहरमें चार बार पूजाका विधान है। इसमें शिवजीको पंचामृतसे स्नान कराकर चन्दन, पुष्प, अक्षत, वस्त्रादिसे श्रृंगारकर आरती करनी चाहिये। रात्रिभर जागरण तथा पंचाक्षर-मन्त्रका जप करना चाहिये। रुद्राभिषेक, रुद्राष्टाध्यायी तथा रुद्रीपाठका भी विधान है।

प्रथम आख्यान

पद्मकल्पके प्रारम्भमें भगवान् ब्रह्मा जब अण्डज, पिण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज एवं देवताओं आदिकी सृष्टि कर चुके, एक दिन स्वेच्छासे घूमते हुए क्षीरसागर पहुँचे। उन्होंने देखा भगवान् नारायण शुभ्र, श्वेत सहस्रफणमौलि शेषकी शय्यापर शान्त अधलेटे हैं। भूदेवी, श्रीदेवी, श्रीमहालक्ष्मीजी शेषशायीके चरणोंको अपने अंकमें लिये चरण-सेवा कर रही हैं। गरुड, नन्द, सुनन्द आदि पार्षद तथा गन्धर्व, किन्नर आदि विनम्रतापूर्वक हाथ जोड़े खड़े हैं। यह देख ब्रह्माजीको अति आश्चर्य हुआ। ब्रह्माजीको गर्व हो गया था कि मैं एकमात्र सृष्टिका मूल कारण हूँ और मैं ही सबका स्वामी, नियन्ता तथा पितामह हूँ, फिर यह वैभवमण्डित कौन यहाँ निश्चिन्त सोया है।

श्रीनारायणको अविचल शयन करते हुए देखकर उन्हें क्रोध आ गया। ब्रह्माजीने समीप जाकर कहा—तुम कौन हो? उठो! देखो, मैं तुम्हारा स्वामी, पिता आया हूँ। शेषशायीने केवल दृष्टि उठायी और मन्द मुसकानसे बोले—वत्स! तुम्हारा मंगल हो। आओ, इस आसनपर बैठो। ब्रह्माजीको और अधिक क्रोध हो आया, झल्लाकर बोले—मैं तुम्हारा रक्षक, जगत्का पितामह हूँ। तुमको मेरा सम्मान करना चाहिये। इसपर भगवान् नारायणने कहा—जगत् मुझमें स्थित है, फिर तुम उसे अपना क्यों कहते हो? तुम मेरे नाभि-कमलसे पैदा हुए हो, अतः मेरे पुत्र हो। मैं स्रष्टा, मैं स्वामी—यह विवाद दोनोंमें होने लगा। श्रीब्रह्माजीने 'पाशुपत' और श्रीविष्णुजीने 'माहेश्वर' अस्त्र उठा लिया। दिशाएँ अस्त्रोंके तेजसे

जलने लगीं, सृष्टिमें प्रलयकी आशंका हो गयी थी। देवगण भागते हुए कैलासपर्वतपर भगवान् विश्वनाथके पास पहुँचे। अन्तर्यामी भगवान् शिवजी सब समझ गये। देवताओंद्वारा स्तुति करनेपर वे बोले—'मैं ब्रह्मा-विष्णुके युद्धको जानता हूँ। मैं उसे शान्त करूँगा। ऐसा कहकर भगवान् शंकर सहसा दोनोंके मध्यमें अनादि, अनन्त-ज्योतिर्मय स्तम्भके रूपमें प्रकट हुए।'

शिवलिङ्गतयोद्भूतः कोटिसूर्यसमप्रभः॥

माहेश्वर, पाशुपत दोनों अस्त्र शान्त होकर उसी ज्योतिर्लिंगमें लीन हो गये। ब्रह्मा और विष्णु दोनोंने उस लिंगके आदि-अन्तका पता लगानेका प्रयास किया, पर निष्फल रहे।

यह लिंग निष्कल ब्रह्म, निराकार ब्रह्मका प्रतीक है। श्रीविष्णु और श्रीब्रह्माजीने उस लिंग (स्तम्भ)-की पूजा-अर्चना की। यह लिंग फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीको प्रकट हुआ तभीसे आजतक लिंगपूजा निरन्तर चली आ रही है। श्रीविष्णु और श्रीब्रह्माजीने कहा—महाराज! जब हम दोनों लिंगके आदि-अन्तका पता न लगा सके तो आगे मानव आपकी पूजा कैसे करेगा? इसपर कृपालु भगवान् शिव द्वादशज्योतिर्लिंगमें विभक्त हो गये। महाशिवरात्रिका यही रहस्य है। (ईशानसंहिता)

द्वितीय आख्यान

वाराणसीके वनमें एक भील रहता था। उसका नाम गुरुद्रुह था। उसका कुटुम्ब बड़ा था। वह बलवान् और क्रूर था। अतः प्रतिदिन वनमें जाकर मृगोंको मारता और वहीं रहकर नाना प्रकारकी चोरियाँ करता था। शुभकारक महाशिवरात्रिके दिन उस भीलके माता-पिता, पत्नी और बच्चोंने भूखसे पीड़ित होकर भोजनकी याचना की। वह तुरंत धनुष लेकर मृगोंके शिकारके लिये सारे वनमें घूमने लगा। दैवयोगसे उस दिन उसे कुछ भी शिकार नहीं मिला और सूर्य अस्त हो गया। वह सोचने लगा—अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? माता-पिता, पत्नी, बच्चोंकी क्या दशा होगी? कुछ लेकर ही घर जाना चाहिये, यह सोचकर वह व्याध एक जलाशयके समीप पहुँचा कि रात्रिमें कोई-न-कोई जीव यहाँ पानी पीने अवश्य आयेगा—उसीको मारकर घर ले जाऊँगा। वह व्याध किनारेपर स्थित बिल्ववृक्षपर चढ़ गया। पीनेके लिये कमरेमें बँधी तूम्बीमें जल भरकर बैठ गया। भूख-प्याससे व्याकुल वह शिकारकी चिन्तामें बैठा रहा।

रात्रिके प्रथम प्रहरमें एक प्यासी हरिणी वहाँ आयी। उसको देखकर व्याधको अति हर्ष हुआ, तुरंत ही उसका वध करनेके लिये उसने अपने धनुषपर एक बाणका संधान किया। ऐसा करते हुए उसके हाथके
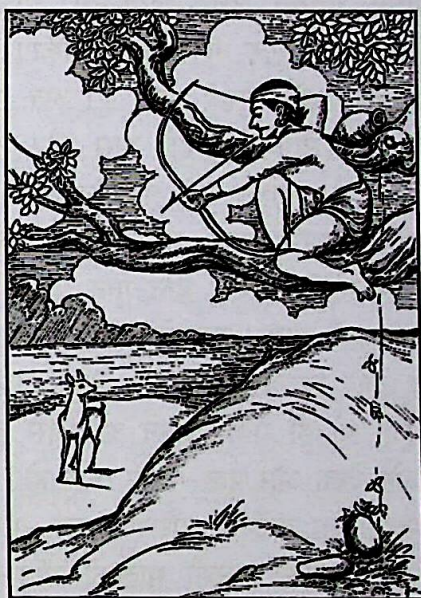
धक्केसे थोड़ा-सा जल और कुछ बिल्वपत्र टूटकर नीचे गिर पड़े। उस वृक्षके नीचे शिवलिंग विराजमान था। वह जल और बिल्वपत्र शिवलिंगपर गिर पड़ा। उस जल और बिल्वपत्रसे प्रथम प्रहरकी शिवपूजा सम्पन्न हो गयी। खड़खड़ाहटकी ध्वनिसे हरिणीने भयसे ऊपरकी ओर देखा। व्याधको देखते ही मृत्युभयसे व्याकुल हो वह बोली—व्याध! तुम क्या चाहते हो, सच-सच बताओ। व्याधने कहा—मेरे कुटुम्बके लोग भूखे हैं, अतः तुमको मारकर उनकी भूख मिटाऊँगा। मृगी बोली—भील! मेरे मांससे तुमको, तुम्हारे कुटुम्बको सुख होगा, इस अनर्थकारी शरीरके लिये इससे अधिक महान् पुण्यका कार्य भला और क्या हो सकता है! परंतु इस समय मेरे सब बच्चे आश्रममें मेरी बाट जोह रहे होंगे। मैं उन्हें अपनी बहनको अथवा स्वामीको सौंपकर लौट

आऊँगी। मृगीके शपथ खानेपर बड़ी मुश्किलसे व्याधने उसे छोड़ दिया।

द्वितीय प्रहरमें उस हरिणीकी बहन उसीकी राह देखती हुई, उसे ढूँढ़ती हुई जल पीने वहाँ आ गयी। व्याधने उसे देखकर बाणको तरकशसे खींचा। ऐसा करते समय पुनः पहलेकी भाँति शिवलिंगपर जल-बिल्वपत्र गिर गये। इस प्रकार दूसरे प्रहरकी पूजा सम्पन्न हो गयी। मृगीने पूछा—व्याध! यह क्या करते हो? व्याधने पूर्ववत् उत्तर दिया—मैं अपने भूखे कुटुम्बको तृप्त करनेके लिये तुझे मारूँगा। मृगीने कहा—मेरे छोटे-छोटे बच्चे घरमें हैं। अतः मैं उन्हें अपने स्वामीको सौंपकर तुम्हारे पास लौट आऊँगी। मैं वचन देती हूँ। व्याधने उसे भी छोड़ दिया।

व्याधका दूसरा प्रहर भी जागते-जागते बीत गया। इतनेमें ही एक बड़ा हृष्ट-पुष्ट हिरण मृगीको ढूँढ़ता हुआ वहाँ आया। व्याधके बाण चढ़ानेपर पुनः कुछ जल और बिल्वपत्र लिंगपर गिरे। अब तीसरे प्रहरकी पूजा भी हो गयी। मृगने आवाजसे चौंककर व्याधकी ओर देखा और पूछा—क्या करते हो? व्याधने कहा—तुम्हारा वध करूँगा, हरिणने कहा—मेरे बच्चे भूखे हैं। मैं बच्चोंको उनकी माताको सौंपकर तथा उनको धैर्य बँधाकर शीघ्र ही यहाँ लौट आऊँगा। व्याध बोला—जो-जो यहाँ आये, वे सब तुम्हारी ही तरह बातें तथा प्रतिज्ञा कर चले गये, परंतु अभीतक नहीं लौटे। शपथ खानेपर उसने हिरणको भी छोड़ दिया। मृग-मृगी सब अपने स्थानपर मिले। तीनों प्रतिज्ञाबद्ध थे, अतः तीनों जानेके लिये हठ करने लगे। अतः उन्होंने बच्चोंको अपने पड़ोसियोंको सौंप दिया और तीनों चल दिये। उन सबको एक साथ आया देख व्याधको अति हर्ष हुआ। उसने तरकशसे बाण खींचा, जिससे पुनः जल-बिल्वपत्र शिवलिंगपर गिर पड़े। इस प्रकार चौथे प्रहरकी पूजा भी सम्पन्न हो गयी।

रात्रिभर शिकारकी चिन्तामें व्याध निर्जल, भोजनरहित जागरण करता रहा। शिवजीका रंचमात्र भी चिन्तन नहीं किया। उससे चारों प्रहरकी पूजा अनजानेमें स्वतः ही हो गयी। उस दिन महाशिवरात्रि थी, जिसके प्रभावसे व्याधके सम्पूर्ण पाप तत्काल भस्म हो गये।

इतनेमें ही मृग और दोनों मृगियाँ बोल उठे—व्याधशिरोमणे! शीघ्र कृपाकर हमारे शरीरोंको सार्थक करो और अपने कुटुम्ब—बच्चोंको तृप्त करो। व्याधको बड़ा विस्मय हुआ। ये मृग ज्ञानहीन पशु होनेपर भी धन्य हैं, परोपकारी हैं और प्रतिज्ञापालक हैं, मैं मनुष्य होकर भी जीवनभर हिंसा, हत्या और पापकर अपने कुटुम्बका पालन करता रहा। मैंने जीव-हत्या करके उदरपूर्ति की, अतः मेरे जीवनको धिक्कार है! धिक्कार है!! व्याधने बाणको रोक लिया और कहा—श्रेष्ठ मृगो! तुम सब जाओ। तुम्हारा जीवन धन्य है!

व्याधके ऐसा कहनेपर तुरंत भगवान् शंकर लिंगसे प्रकट हो गये और उसके शरीरको स्पर्शकर प्रेमसे कहा—वर माँगो। 'मैंने सब कुछ पा लिया'—यह कहते हुए व्याध उनके चरणोंमें गिर पड़ा। श्रीशिवजीने प्रसन्न होकर उसका 'गुह' नाम रख दिया और वरदान दिया कि भगवान् राम एक दिन अवश्य ही तुम्हारे घर पधारेंगे और तुम्हारे साथ मित्रता करेंगे। तुम मोक्ष प्राप्त करोगे। वही व्याध शृंगवेरपुरमें निषादराज 'गुह' बना, जिसने भगवान् रामका आतिथ्य किया।

वे सब मृग भगवान् शंकरका दर्शनकर मृगयोनिसे मुक्त हो गये। शापमुक्त हो विमानसे दिव्य धामको चले गये। तबसे अर्बुद पर्वतपर भगवान् शिव व्याधेश्वरके नामसे प्रसिद्ध हुए। दर्शन-पूजन करनेपर वे तत्काल मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं।

यह महाशिवरात्रिव्रत 'व्रतराज' के नामसे विख्यात है। यह शिवरात्रि यमराजके शासनको मिटानेवाली है और शिवलोकको देनेवाली है। शास्त्रोक्त विधिसे जो इसका जागरणसहित उपवास करते हैं, उन्हें मोक्षकी प्राप्ति होती है। शिवरात्रिके समान पाप और भय मिटानेवाला दूसरा व्रत नहीं है। इसके करनेमात्रसे सब पापोंका क्षय हो जाता है। [शिवपुराण]

श्रीगुरु गोरखनाथजीका जीवन-दर्शन

(साहित्याचार्य रावत श्रीचतुर्भुजदासजी चतुर्वेदी)
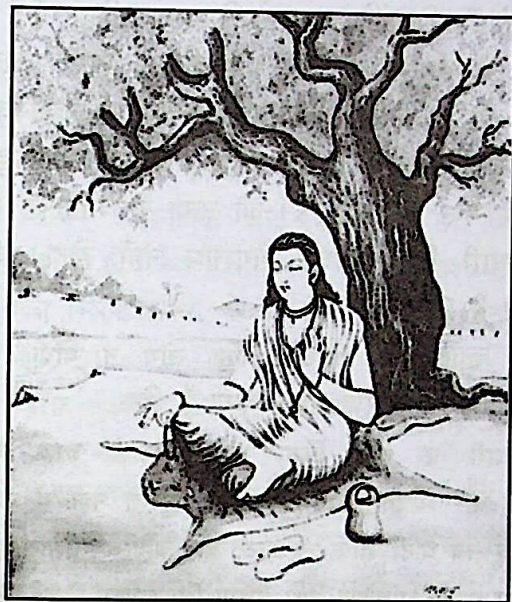
श्रीगुरु गोरखनाथजीकी वाणीका समादर संतसमाजमें अच्छा होता पाया गया है, यद्यपि इनकी वाणीका प्रभाव अभी जन-साधारणपर उतना नहीं पड़ा, जितना कि भक्तशिरोमणि तुलसीदासजीकी रामायणका।

श्रीगुरु गोरखनाथकी वाणीने प्रत्येक वस्तुका स्पर्श किया है और जातिविशेषको भी उसके कर्मानुसार ही अच्छा उपदेश दिया है। अपनी वाणीमें योगियोंके लिये 'अवधूत' शब्दका प्रयोग किया है। अतः अवधूतोंको सम्बोधन करते हुए उनको सुधारनेकी शिक्षा दी है, जैसा कि नीचेके अवतरणोंसे प्रकट होता है, जिनमें शिक्षा दी गयी है कि सब व्यवहार युक्तिपूर्वक और सोच-समझकर करने चाहिये—

वाणी

हबकि न बोलिबा ठबकि न चलिबा धीरै धरिबा पाँवं।
गरब न करिबा सहजैं रहिबा भणत गोरष रावं॥
भरथा (भरीया) ते थीरं झल झलंति आधा।
सिधे सिध मिल्या रे अवधू बोल्या अरु लाधा॥
नाथ कहै तुम सुनहु रे अवधू दिढ़ करि राषहु चीया।
काम क्रोध अहंकार निबारौ तौ सबै दिसंतर कीया॥

एकदम अचानक जल्दीसे नहीं बोलना चाहिये। पाँव फटाफट करके यानी पटकते हुए नहीं चलना चाहिये। धीरे-धीरे पैर रखना चाहिये। घमंड नहीं करना चाहिये। सदैव सहज स्वाभाविक स्थितिमें रहना चाहिये, यह गोरखनाथका उपदेश है। जो भरे-पूरे हैं और ज्ञानयुक्त हैं, वे ही स्थिर और गम्भीर होते हैं। ऐसे पूरे योगी अपने ज्ञानका प्रदर्शन नहीं करते-फिरते। जिस प्रकार ओछे घट छलकते हैं, उसी प्रकार अधूरे योगी अपना प्रदर्शन करते-फिरते हैं और अपने चंचल स्वभावके कारण ऐसे योगी यत्र-तत्र ज्ञानका दिखावा करते हैं। सिद्धि-प्राप्त पुरुष ऐसे छिछोड़ोंसे नहीं बोला करते, अतः हे अवधूत! सिद्धको पाकर ही सिद्ध बोलते हैं।

योगीजनोंका कोई घर-बार नहीं होता, सर्वत्र और सारी दुनियाँ ही उनका घर है, इस कारण वे सब जगह घूमते रहते हैं। यही उनकी विरक्तताका द्योतक है। इनमेंसे कुछ ऐसे भी योगी हैं, जिनको देशाटन करनेकी आदत-सी पड़ गयी है। ऐसोंके लिये श्रीगोरखनाथका उपदेश है कि देश-देशान्तरमें भ्रमण करना स्वयं देशान्तरके उद्देश्य अथवा लक्ष्यसे आवश्यक नहीं है। तात्पर्य यह है कि जब चित्त स्थिर है और काम-क्रोध-लोभ-मोह तथा अहंकारका निवारण हो गया है तो फिर सभी देशान्तर हो गये। कारण यह है कि निवृत्तिके ही लिये देशान्तर किया जाता है, जो चित्तकी स्थिरतासे निष्पन्न हो जाता है। यहाँ 'चीया' शब्दका अर्थ है चित्त। योगीको तो चाहिये—

'थोड़ा बोलै थोड़ा षाइ तिस घटि पवनां रहै समाइ।'

कम बोलना चाहिये और थोड़ा खाना चाहिये; यह नहीं कि भोजनको अनाप-शनाप खाया जाय। जो मितभाषी तथा अल्पाहारी है, उसके शरीरमें पवन समाया रहता है।

अवधू अहार तौड़ो निद्रा मोड़ो कबहु न होइगा रोगी।
छठै छमासै काया पलटिबा ज्युं को को बिरला योगी॥

देव कला ते संजम रहिबा भूत कला आहारं।
मन पवना लै उनमनि धरिबा ते जोगी तत सारं॥
अवधू निद्रा कै घरि व्याल जंजालं अहार कै घरि चोरं।
मैथुन कै घरि जुरा गरासै अरध उरध लै जोरं॥

हे अवधूत! आहारको तोड़ो यानी कम खाओ, मिताहारी बनो और सोओ भी नहीं और छठे-छमासे कभी-कभी काया-कल्प भी किया करो। इस क्रियासे कभी रोगी नहीं हो पाओगे, ऐसा तो बिरले ही योगी कर पाते हैं।

आहार उतना ही करना चाहिये, जिससे शरीरकी रक्षा हो सके, जिससे अपने देवत्वकी रक्षा हो, इस संयमसे रहना चाहिये। जो योगी मन-पवनको संयुक्तकर उन्मनावस्थामें लीन कर देते हैं, वे ही तत्त्वका सार प्राप्त करते हैं। निद्रामें आसक्ति होनेसे जीव कालके जंजालमें फँसता है और मैथुनसे बुढ़ापा आ घेरता है। अत: नीचे गिरनेवाले (अरध) रेतस्‌को ऊर्ध्वावस्थासे जोड़ना चाहिये। तात्पर्य यह है कि ऊर्ध्वरेता होना चाहिये।

अति अहार यंद्री बल करै, नासै, ग्यान मैथुन चित धरै।
व्यापै न्यंद्रा झंपै काल, ताके हिरदै सदा जंजाल॥
घटि घटि गोरष वाही क्यारी, जो निपजै सो होइ हमारी।
घटि घटि गोरष कहै कहाँणी काँचै भांड़ै रहै न पाणी॥

अत्यन्त आहार करनेसे इन्द्रियाँ बलवती हो जाती हैं, जिससे ज्ञानका नाश होता है और तब वह व्यक्ति वासना-तृप्तिकी इच्छा करने लगता है और उसकी निद्रा बढ़ जाती है तथा काल उसे ढक लेता है। फिर ऐसा पुरुष हमेशा उलझनमें पड़ा रहता है।

गोरख प्रत्येक शरीरमें अपना उपदेश कर रहे हैं, अनाहत नाद हो रहा है। परंतु इसका लाभ तो वे ही उठा सकते हैं, जिन्होंने अपनी कायाको सिद्ध कर लिया है। 'गोरख' शब्दकी व्याख्या इस प्रकार है—जो ब्रह्ममें लीन आत्मा होनेके कारण स्वयं ब्रह्म है, जो प्रत्येक व्यक्तिकी शरीररूपी क्यारीको जोतता-बोता है, यानी प्रत्येकके हृदयमें परमात्मा बीजरूपसे मौजूद है, विद्यमान है, परंतु गोरखकी ब्रह्मकी वही क्यारी है, जिसमें कुछ उपज हो। कहनेका तात्पर्य यह है कि गोरख हरेक शरीरमें अपना उपदेश कर रहे हैं। लाभ वे ही उठा सकते हैं, जिन्होंने कायाको सिद्ध कर लिया है।

हे अवधूत! शरीरको वश करनेके बाहरी उपायोंसे योग-सिद्धि नहीं होती, कारण कि खड़ाऊँ पहननेवाला चलनेमें फिसल जाता है, लोहेकी साँकलोंसे जकड़नेसे शरीर नष्ट हो जाता है। जो नागा है, मौनी है तथा दूधाधारी है, इतनोंको योगलाभ नहीं होता। जैसा कहा है—

नागा मूनी दूधाधारी एता जोग न पाया।

इसका कारण यह बताया है कि—

दूधाधारी पर घरि चित, नागा लकड़ी चाहै नित।
मोनी करै म्यंत्रकी आस, बिन गुर गुदड़ी नहीं बे सास।
अवधू नव घाटी रोकि लै बाट, बाई बणिजै चौसठि हाट।
काया पलटै अविचल विध, छाया विबर जित निपजै सिध।
अवधूत दंभ कौ गहिबा, उनमनि रहिबा, ज्यूँ बाजबा अनहद तूरं।
गगन मंडलमें तेज चमक्कै चंद नहीं तहाँ सूरं॥

योगीको इस प्रकार रहना चाहिये। उसे उन्मनावस्थामें लीन रहना चाहिये। झरनेपर पानी (अमृत) पीना चाहिये। गुरुके मुखसे ज्ञानोपदेश सुननेके लिये लंका क्या परलंका जाना चाहिये अर्थात् माया (लंका राक्षसोंकी मायाविनी नगरी)-को छोड़कर उससे परे (पर लंका) हो जाना चाहिये। तभी गुरुका दिया ज्ञानोपदेश हृदयंगम हो सकता है और तब फिर वह वास्तविक योगी हो सकता है। गुरु-महिमामें परमहंस अनन्त श्रीभोपाजी महाराजकी प्रार्थना है (जाग्रत जीवनसे)—

गुरु मध्य आदि अनन्त अद्भुत अमल अगम अगोचरम्।
विभु विरज पार अपार निर्गुण सगुण सत विश्वेश्वरम्॥
जिहि मति लखै नहिं तेहि लखै सो शुद्ध तत्व विचार है।
जो चरण कमलकी ओर आया भवसे बेड़ा पार है॥
गुरु विष्णु मूरत शिवकी सूरत गुरु वही ब्रह्मा जान तू।
गुरु ब्रह्म है पर ब्रह्म है यह सोच समझके मान तू॥
कर गुरुकी संगत रात दिन नर जन्म अपना सुधार ले।
दे फेंक माया बोझ सिरसे यमका शीश न भार ले॥

ब्रह्मचर्य

(श्रीकैलाशचन्द्रजी शर्मा, चार्टर्ड एकाउण्टेट)

[लेखकके द्वारा 'श्रीहनुमानचरितमानस' के नामसे एक पद्यबद्ध ग्रन्थकी रचना हुई है, जिसमें श्रीहनुमान्‌जीसे सम्बन्धित कथाओंका संकलन है, जिसका कुछ अंश यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है—सम्पादक]

नारायण के भक्तवर नारद हैं विख्यात।
विश्व विमोहिनि स्मरण कर वे भी हों उद्भ्रान्त॥

श्रीमन् नारायणके भक्तश्रेष्ठ नारद तो विश्वमें विख्यात हैं ही। अपने साथ घटित हुए विश्वमोहिनी प्रसंगका स्मरण करके, वे भक्तश्रेष्ठ नारद भी उद्भ्रान्त हो जाते हैं।

देखि सुअवसर संग वर गूढ़ प्रश्न तब कीन्ह।
बाल ब्रह्मचर्यैक हैं मारुति परम प्रवीन॥

सुन्दर अवसर एवं सनकादिकी सुन्दर संगति प्राप्त करके नारदने परम प्रवीण एवं एकमात्र नैष्ठिक बाल ब्रह्मचारी श्रीहनुमान्‌जीसे यह गूढ़ प्रश्न किया।

नाहिं हुआ, ना है, न हो, को भविष्य के काल।
ब्रह्मचर्य का अतुल-ध्वज केवल केसरिलाल॥

नारदजीने कहा कि हे केसरीपुत्र! आपके समान ब्रह्मचारी तीनों कालोंमें ना कोई कभी हुआ, ना है तथा ना ही भविष्यमें होगा।

ब्रह्मचारि! आचार्यवर! परमविज्ञ! हनुमान।
इसके तत्त्व रहस्य का दें मुझको भी ज्ञान॥

हे ब्रह्मचारी! हे आचार्यश्रेष्ठ! हे परमविज्ञ! हे हनुमान्‌जी! आप कृपा करके इस ब्रह्मचर्यके तत्त्व एवं रहस्यका ज्ञान मुझे भी प्रदान करिये।

सुनि सुपात्र से प्रश्नवर जनहित का रख ध्यान।
बोले श्रीहनुमान निज अनुभव शास्त्र प्रमान॥

सुपात्र नारदसे उत्तम प्रश्न सुनकर तथा जनहितको ध्यानमें रखते हुए, हनुमान्‌जीने ब्रह्मचर्यके सम्बन्धमें शास्त्रीय प्रमाण-मीमांसाके साथ मुख्य रूपसे अपना अनुभव, अग्रांकित प्रकारसे कहा।

प्रश्न तात! तव जन सुखदायी। साधन मणि यह सिद्धि सुहायी।
ब्रह्मचर्य बिनु सुन मुनिराजा!। योग भक्ति से सरहिं न काजा॥

हनुमान्‌जीने कहा कि हे नारदजी! आपका प्रश्न लोक-कल्याणकारी है। सुहावनी सिद्धिके लिए यह प्रश्न साधनमणिके समान है। हे मुनिराज! ब्रह्मचर्यके बिना, केवल योग एवं भक्तिसे सम्पूर्ण कार्यकी सिद्धि नहीं हो पाती है।

तेज ओज बल बुद्धि प्रभावा। स्वास्थ्य स्वस्थ निजबोध स्वभावा॥
ब्रह्मचर्य के हैं फल फूला। ब्रह्मचर्य इन सबका मूला॥

तेज, ओज, बल, बुद्धि, व्यक्तित्वका प्रभाव, स्वास्थ्य, आत्मबोध तथा स्वरूपावस्थक स्वभावादि तो ब्रह्मचर्यके ही पुष्प एवं फलमात्र हैं। इन सभीका मूल तो ब्रह्मचर्य ही है।

ब्रह्मचर्य बल से कामारी। हैं त्रिभुवनगुरु अरु त्रिपुरारी॥
स्थूल सूक्ष्म कारण त्रय-देहा। ब्रह्मचर्य बिनु ग्रस्त प्रमेहा॥

ब्रह्मचर्यकी शक्ति से ही भगवान् शिव कामारि, जगद्गुरु एवं त्रिपुरारि बन पाये हैं। ब्रह्मचर्यके बिना मनुष्यके तीनों शरीर (अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीर) अब्रह्मचर्यरूपी प्रमेहसे ग्रस्त होकर रोगी ही बने रहते हैं।

खण्डित ब्रह्मचर्य जिस जन का। साधन तेजस्त्रवत नित उसका॥
फूटे घट सम होहिं न पूरा। साधन रहत सदैव अधूरा॥
अतः सिद्धि इच्छुक साधक वर। समझें ब्रह्मचर्य सम्यक् कर॥

जिस भी मनुष्य अथवा जनका ब्रह्मचर्य खण्डित हो जाता है, उसका साधनरूपी तेज रिसता रहता है, बहता रहता है, नष्ट होता रहता है। जिस प्रकार फूटे हुए घड़ेमेंसे लगातार पानी रिसनेके कारण वह कभी भरा हुआ नहीं रह सकता, वैसे ही जिन लोगोंका ब्रह्मचर्य खण्डित हो जाता है, उनका साधनरूपी घड़ा भी कभी पूरा नहीं हो पाता, नित्य अधूरा एवं अपूर्ण ही रहता है। अतः सिद्धि प्राप्त करनेके इच्छुक, श्रेष्ठ साधकको चाहिये कि वह ब्रह्मचर्यको सम्यक्तया समझे।

ब्रह्मचारि का शब्दशः समझ प्रथम भावार्थ।
तब समझें इस शब्द का प्रचलित जो रूढ़ार्थ॥

सर्वप्रथम ब्रह्मचारीका शाब्दिक अर्थ समझें, तब इसके भावार्थको समझें तथा तत्पश्चात् ब्रह्मचर्य शब्दका जो लोकमें प्रचलित रूढ़ार्थ है, उसको समझें।

तात! शब्द सादृश्य से ब्रह्मचर्य का अर्थ॥
सहज स्पष्ट है ग्राह्य है वही मात्र थिर अर्थ॥

हे तात! शब्द-सादृश्यसे ब्रह्मचर्यका अर्थ सहज ही स्पष्ट रूपसे ग्रहण किया जा सकता है, समझा जा सकता है तथा इस प्रकार समझा हुआ अर्थ ही ब्रह्मचर्यका स्थिर अर्थ होता है।

करहिं जो दुराचरण जग माहीं। वही दुराचारी कहलाहीं॥
मिथ्याचरण निरत जन जो भी। है मिथ्याचारी हो को भी॥

संसारमें जो दुराचरण करता है वह दुराचारी कहलाता है। जो मिथ्याचरणमें लीन है, वह चाहे कोई भी क्यों ना हो, मिथ्याचारी ही कहलाता है।

भ्रष्टाचरण करत जो कोई। भ्रष्टाचारी है बस सोई॥
ब्रह्माचरण निरत जन ताता!। त्योंहि ब्रह्मचारी कहलाता॥

जो भ्रष्टाचरण करता है, बस वही भ्रष्टाचारी कहलाता है। वैसे ही, जो ब्रह्माचरण करता है, वह ब्रह्मचारी कहलाता है।

ब्रह्माचरण माहिं दो शब्दा। ब्रह्म और आचरण विदग्धा॥
ब्रह्म निरुक्त निरूपित नीका। षट्शास्त्रहिं वेदान्त सटीका॥

ब्रह्माचरणमें दो शब्दों (ब्रह्म एवं आचरण)-को भलीभाँति निरूपित किया गया है तथा षट्शास्त्रों (पूर्वमीमांसा, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग तथा उत्तरमीमांसा)-में एवं विशेष रूपसे वेदान्तमें, ब्रह्म शब्दकी तो विस्तृत टीका (व्याख्या) भी की गयी है।

जिससे ना कोई बृहत् ना जिससे कोइ सूक्ष्म।
अज अनन्त गोतीत वह स्वयंसाक्षी सोइ ब्रह्म॥

जिससे बृहत् (अर्थात् बड़ा) भी अन्य कोई नहीं है तथा जिससे सूक्ष्म एवं छोटा भी अन्य कोई नहीं है, जो अजर है, अमर है, इन्द्रियोंकी पहुँचसे बाहर है, परे है तथा जो स्वयं ही अपना साक्षी है (अर्थात् उसके पूर्व, पश्चात् एवं समकालमें भी कोई नहीं है), वह ब्रह्म है।

सत्य सच्चिदानन्दघन ज्ञान अनन्तहि ब्रह्म॥
दृढ़ ज्ञप्ति चेतन वही वही सूक्त है ब्रह्म॥

जो एकमात्र सत्य है, सत्-चित्-आनन्दस्वरूप है, ज्ञान है, अनन्त है तथा सर्वव्याप्त चेतन है, उसे ही ब्रह्म कहा गया है।

अध्यारोपऽपवाद से निष्प्रपञ्च जो होय।
नेति नेति के अन्त पर ज्ञप्ति कहावहि सोय॥

अध्यारोप एवं अपवादसे जो निष्प्रपञ्च सिद्ध हो जाता है तथा नेति-नेतिकी शास्त्रीय प्रक्रियासे स्वयंके अतिरिक्त सबका निषेध कर देनेके अनन्तर जो ज्ञप्तिस्वरूप शेष बच जाता है, वही ब्रह्म है।

देह करण गो जाय जहँ तहँ दीखे बस ब्रह्म।
तत्त्वदृष्टि दर्शन यही यही आचरण-ब्रह्म॥

तत्त्वदृष्टि एवं उसका दर्शन यह है कि यह शरीर, इसकी दसों इन्द्रियाँ एवं अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार) जहाँ-जहाँ भी जाते हैं, वहाँ-वहाँ केवल उस ब्रह्मका ही दर्शन करें, अनुभव करें तथा विवेचन करके उस ब्रह्मको उस-उस विषयमें उपलब्ध करें, तब देह, इन्द्रियों एवं अन्तःकरणका यह आचरण ही ब्रह्माचरण कहलाता है।

कनकदृष्टि से तात! सब आभूषण ज्यों हेम।
ब्रह्मदृष्टि से द्वैत त्यों मात्र ब्रह्म निज प्रेम॥

जिस प्रकार स्वर्णदृष्टिसे स्वर्णके बने हुए समस्त आभूषण स्वर्णके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं हैं (अर्थात् स्वर्ण ही हैं), वैसे ही, इस संसारको जब ब्रह्मदृष्टिसे देखा जाता है तो यह समस्त संसार भी ब्रह्मके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है (अर्थात् ब्रह्म ही है)।

अतः ब्रह्मचारी बस वो ही। स्व पर रहित ब्रह्मचर जो ही॥
तात्त्विक ब्रह्मचर्य यह ताता। निरुपाधिक जन ही गह पाता॥

(चूँकि, ब्रह्मदृष्टिसे जब सब कुछ ब्रह्म ही सिद्ध हो गया है) अतः ब्रह्मचारी केवल और केवल वही व्यक्ति है जिसकी दृष्टिमें अपने और परायेका तात्त्विक भेद समाप्त हो गया है, द्वैत नष्ट हो गया है, द्वन्द्व नष्ट हो गया है तथा एकमात्र ब्रह्म ही सर्वत्र अनुभवस्वरूप हो गया है। यह तात्त्विक ब्रह्मचर्यका स्वरूप है। इस तात्त्विक ब्रह्मचर्यकी उपलब्धि केवल और केवल उसीको होती है, जो ज्ञानसे उद्भासित होकर सर्वथा निरुपाधिक हो जाता है (अर्थात् जिसकी दृष्टिमें सब कुछ ब्रह्म सिद्ध हो जानेसे नाम-रूप-सम्बन्धादि एवं नर तथा नारीका लिंगादि भेद पूर्णतः उपाधिजन्य सिद्ध हो जाता है, दार्शनिक स्तरपर अभेद हो जाता है, महत्त्वहीन हो जाता है, व्यावहारिक भर हो जाता है, मिथ्या सिद्ध हो जाता है)।

आधि व्याधि समाधि उपाधी। ब्रह्मचर्य में बाधक क्षाधी॥
जब निर्मान होय सब भाँती। तन मन गो ना मान दिखाती॥

आधि (अर्थात् मानसिक संवेदनाएँ), **व्याधि** (अर्थात् शारीरिक एवं भौतिक संवेदनाएँ), **समाधि** (अर्थात् स्वरूपावस्थानकी स्थितिमें बाह्य संवेदनाओंसे रहित अवस्था) एवं समस्त **उपाधियाँ** (अर्थात् जगन्नाटकमें नाटकके मंचनके लिये विभिन्न पात्रों या किरदारोंको दिये गये नाम, रूप एवं कार्योंको सत्य समझनेकी भूल) तात्त्विक ब्रह्मचर्यकी सिद्धिमें बाधक हैं। जब प्राणी अपनी ब्रह्मदृष्टिसे सर्वथा अमान (अर्थात् अज्ञानसे अपने आपको प्राणी, मनुष्य, हिन्दू-मुसलमान, नर-नारी, ब्राह्मण-शूद्र, उच्च-निम्न, शिक्षित-अशिक्षित, धनी-निर्धन, पिता-पुत्र आदि मान बैठनेकी भूलको समझ जाता है तथा उस भूलको सुधार देता है और उन-उन मिथ्या मानोंको मनसे त्याग देता है, उनसे मुक्त) हो जाता है तथा उसे जगन्नाटकमें स्वाँगके लिये धारण किये गये तन एवं मनका अभिमान नहीं रहता, तो वह निर्मान कहलाता है।

देहदृष्टि जब रहे न शेषा। लिंग-भेद निर्भेद अशेषा॥
लिंग-भेद बिनु किमि आकर्षण। ब्रह्मचर्य का हो तब वर्षण॥

जब उसकी देहबुद्धि एवं लिंगभेद (अर्थात् स्वाँगके लिये जिस नर या नारीका रूप धारण करता है, अपने आपको वही मान लेनेकी आदत, प्रवृत्ति, स्वभाव एवं भ्रान्ति)-की पूर्णत: जड़ ही कट जाती है, तब लिंगभेदके बिना कोई भी पारस्परिक आकर्षण रह ही नहीं जाता है। इस प्रकार, देह एवं लिंगभेदजन्य आकर्षणरहित आचरणकी स्थितिमें ही ब्रह्मचर्यका पूर्ण वर्षण होता है, विकास होता है।

लिंग-भेद राहित्य प्रभावा। ना हो स्खलित न का प्रभावा॥
ओज सुरक्षित उसका होई। सूक्ष्म ब्रह्मचारी है सोई॥

इस तरह जो लिंगभेदसे प्रभावित नहीं होता, वह फिर स्खलित या आकर्षित भी नहीं हो सकता। ऐसी स्थितिमें, उसके ओजका संरक्षण हो जाता है। ऐसा व्यक्ति ही सूक्ष्म ब्रह्मचारी कहलाता है।

कनक नारि-नर भेद न जैसे। ना आकर्षण ता में तैसे॥
त्योंहि पाँचभौतिक नर नारी। भेदाकर्षण सत्य कहाँ री॥

स्वर्णकी बनी हुई नरमूर्ति एवं नारीमूर्तिमें स्वर्णकी दृष्टिसे कोई वास्तविक अथवा तात्त्विक भेद नहीं होता, दोनों केवल स्वर्णका ही विवर्तन होते हैं तथा उनमें परस्पर कोई आकर्षण-विकर्षण भी नहीं होता है। जब ऐसा है, तो विचार करिये कि वास्तविक नर-शरीर एवं नारी-शरीर भी स्वर्णके नर-नारीकी तरह केवल और केवल जड़ पञ्चभूतोंसे ही तो बने होते हैं, अत: उनमें भेद अथवा आकर्षण किस आधारपर हो सकता है? दूसरे शब्दोंमें, कैसे विचारसम्मत एवं सत्य हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता। यदि ऐसा है, तो फिर व्यवहारमें आकर्षण पाया ही क्यों जाता है? इसका प्रथम कारण है अविचार (अर्थात् आपने कभी इस नर-नारीके परस्पर आकर्षणपर सत्य एवं तत्त्वकी दृष्टिसे विचार ही नहीं किया, चिन्तन-मनन ही नहीं किया, सोचा ही नहीं) तथा दूसरा कारण है अध्यास। (अध्यासका निरूपण आगे किया गया है। संक्षेपमें, अध्यासका तात्पर्य है अज्ञानजन्य भ्रान्ति। उदाहरणके तौरपर आकाशमें ऊचाँईपर उड़ते हुए गिद्ध पक्षियोंको जब नीचे लाल पत्थर दिखायी देते हैं तो भ्रान्तिसे वे उन्हें मृतपशुका मांस समझकर झपट पड़ते हैं तथा अपनी चोंचको क्षतिग्रस्त कर लेते हैं। इसी प्रकार, यद्यपि नर एवं नारीके शरीरमें जो पंचभूत होते हैं, वे समान एवं एक-जैसे ही होते हैं तथा जो चेतन आत्मा होती है वह भी समान ही होती है तथापि इस सत्यको नहीं देख पानेके कारण नर-नारीको एक-दूसरेके शरीरमें मिथ्या आकर्षण प्रतीत होता है, जिसके कारण वे मृत्युपर्यन्त ग्रस्त, त्रस्त एवं पस्त रहकर अपने अमूल्य जीवनको ही क्षतिग्रस्त कर लेते हैं एवं कई लोग तो नष्ट ही कर लेते हैं)। नर या नारीके शरीरमें प्रतीत होनेवाले अध्यास एवं अध्यासजन्य मिथ्या आकर्षणके कारण अनेक जन्मोंके संस्कार निर्मित हो जाते हैं, जो लिंगभेदके आकर्षणमें सुखका मिथ्या अनुभव करवाते रहते हैं, वैसे ही, जैसे कि मनुष्य इस मिथ्या संसारमें, चलचित्रोंके दृश्योंके समान मिथ्या नाम-रूप-सम्बन्धादिसे अकारण ही हर्ष-विषादका अनुभव करता रहता है।

दर्शन में नर नारि उभय ही। पुरुष कथित व्युत्पत्ति सुलभ ही॥

मोह न पुरुष पुरुष कै रूपा। यह नैसर्गिक नीति अनूपा॥

वैसे भी, पुरुषकी सुलभ व्युत्पत्तिके अनुसार, भारतीय दर्शनमें तो नर एवं नारी, दोनों ही, शरीररूपी पुरमें शयन करनेके कारण पुरुष ही कहलाते हैं। (अतः यदि विचारकी इस सरणि एवं रहस्यको ठीकसे समझ लिया जाय, तो नर एवं नारीमें परस्पर आकर्षणका कोई विचारसम्मत तत्त्व अथवा सच्चा आधार बच ही नहीं जाता है, क्यों नहीं बच जाता है? क्योंकि तत्त्वतः शरीररूपी पुरमें शयन करनेके कारण सभी पुरुष हैं, अभेद हैं,) अन्यथा भी, यह एक प्राकृतिक सिद्धान्त है, नीति है कि पुरुष कभी भी पुरुषकी तरफ आकर्षित या मोहित नहीं होता है। अतः विचारके इस धरातलपर, कामजन्य कामुकताका तो व्यवहारमें प्रवेश ही नहीं हो सकता। नर एवं नारीके शरीरमें [(१)सजातीय पुरुषत्व, (२)पञ्चभूतोंकी समानता एवं, (३)चेतन आत्माकी एकता आदि] उपयुक्त समानताओंके कारण कामावेशकी सम्भावना ही समाप्त हो जाती है।

कदाचरण का मूल नसावे। काम प्रभाव न कुछ कर पावे॥
एहि रहस्य को गहि सविवेका। परस्पराकर्षण हत नीका॥

(नर-नारीकी विजातीय एवं विपरीत-लिंग देहका परस्पर आकर्षण ही) व्यावहारिक तौरपर कदाचरणका मूल आधार सिद्ध होता है। किंतु विचारकी उक्त शैली एवं तीक्ष्ण धारसे कदाचरणका वह मूल आधार ही नष्ट हो जाता है, जिसमें नर एवं नारी दोनों ही पुरुष सिद्ध हो जाते हैं और इसीलिए इस पुरुषत्वको पहचान लेनेसे कामुकता पूर्णतया प्रभावहीन हो जाती है। इस प्रकार, मनुष्य अपने सुविवेकको जगाकर यदि उक्त विचारधारा एवं तात्त्विक दर्शनकी दृष्टिको ग्रहण कर ले (जो शिक्षण, स्वाध्याय एवं चिन्तन-मननसे सर्वथा सम्भव है), तो देहजन्य परस्पर आकर्षण ही नष्ट हो जाता है।

कामजन्य अपराध जगत् में। तब स्वयमेव मिटें पल भर में॥
अतः विवर्तन-दर्शन एहा। नासत् कदाचरण परमेहा॥

विचारकी उक्त स्थिति प्राप्त होनेपर, इस संसारसे कामजन्य समस्त अपराध क्षणभरमें स्वयमेव नष्ट हो जायँगे। अतः सिद्ध यह हुआ कि विवर्तवादके दर्शनका यह दृष्टिकोण कदाचरणरूपी प्रमेहको अवश्य नष्ट कर देगा एवं मानवको ओजस्वी एवं तेजस्वी बना देगा।

जग नाटक दर्शन गहो सम्यक् सांगोपांग।
ब्रह्म विवर्तन जग लखो मिटे काम का स्वांग॥

इस तरह, जगन्नाटकके दर्शनको, अंगों-उपांगोंसहित, सम्यक्तया समझ लेनेसे तथा इस सम्पूर्ण जगत्‌को अद्वयब्रह्मका ही विवर्तन जान लेनेसे, यह अनंग, मनोज या काम स्वयं ही मारा जाता है, नष्ट हो जाता है, निष्क्रिय हो जाता है, निर्विष-सर्पके समान इससे उपद्रवकी कोई आशंका नहीं रह जाती है।

जो अस तो किमि है आकर्षण। है अविचाराध्यास हि कारण॥
सञ्चित संस्कार जन्मन्ह के। है सुख हेतु लिंग भेदहिं के॥

यदि ऐसा है तो फिर लिंगभेद होनेसे आकर्षण क्यों होता है, यह प्रश्न है। उत्तर दिया जा रहा है कि वास्तवमें अविचार एवं अध्यास ही इस आकर्षणका एकमात्र कारण है। अनेक जन्मोंके संस्कार ऐसे बन गये हैं, जिनके चलते लिंगभेद आकर्षण एवं सुखका कारण बना हुआ है। यदि कभी भी कोई गम्भीरतासे इस तथ्यपर विचार करे कि सभी शरीरोंमें जब एक ही प्रकारके पञ्चभूत हैं तथा सभी शरीरोंमे आत्मचैतन्य भी एक ही है, केवल मिथ्या नामरूपात्मक प्रपंचका ही भेद प्रतीत होता है, तो लिंग-भेदजन्य आकर्षण एवं सुखका कोई भी ठोस कारण या आधार सिद्ध ही नहीं हो सकता।

उभय लिंगी भी है इक ताता! । इक अद्वैत न समझें बाता॥
इक इक दो पुनि बहु हो आगे। गणित न अद्वैतहिं पर लागे॥

एकलिंगियों (नर-नारी)-के उपरान्त अब उभय उभयलिंगियोंपर विचार करते हुए यह कहा जा रहा है कि उभयलिंगी (अर्थात् एक ही शरीरमें नर-मादा होना) उभय होते हुए भी एक ही (अर्थात् नर एवं मादा अंग एक ही शरीरमें) होते हैं। किंतु इनके एक होनेका तात्पर्य अद्वैत होना नहीं होता, क्योंकि एक और अद्वैत समान नहीं होते। (परस्पराकर्षण एवं कामुकताका अन्त अद्वैतमें होता है, एकमें नहीं। यही कारण है कि उभयलिंगी एक होते हुए भी उनके नर एवं मादा अंगोंमें परस्पर आकर्षण होता है)।

एक सदैव गणित सापेक्षा। अद्वय स्वयं विचार अशेषा॥
जो अमान वह ज्ञप्ति स्वरूपा। द्रष्टा दृङ् साक्षि निज रूपा॥

जहाँ एकको अवधारणा होती है वहाँ तो एक और एक दो हो ही जाते हैं, द्वैत उत्पन्न हो ही जाता है (तथा द्वैतमें फिर एक जुड़नेसे त्रैत एवं इसी क्रममें फिर बहुत्व, अनेकत्व एवं नानात्व भी हो जाता है।) एक और अद्वैतमें स्थूल अन्तर यह है कि एकको अवधारणा तो गणितसापेक्ष होती है जबकि अद्वैत कभी भी गणितसापेक्ष नहीं होता। अद्वैतकी अवधारणा गणनामूलक नहीं अपितु विचारमूलक है। अद्वैत एक विचार है, दर्शन है, चिन्तन एवं मननकी विधा है न कि कोई संख्यात्मक अवधारणा। जो अमान होता है(अर्थात् मनुष्यादि जातिमान, हिन्दू आदि धर्ममान, नर-नारी आदि लिंगमान, देहादि द्रव्यमान, ब्राह्मणादि वर्णमान, पापी-पुण्यात्मा एवं सुखी-दुखी आदि अभिमानरूपी मानादिको स्वीकार ही नहीं करता, प्रत्युत अपने स्वरूपमें नेति-नेतिके द्वारा इन समस्त मानोंको नकार देता है, निषेध कर देता है) वह केवल ज्ञप्तिस्वरूप (अर्थात् ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाताकी त्रिपुटीके परे), द्रष्टास्वरूप एवं साक्षीस्वरूप (अर्थात् शरीर, इन्द्रियों एवं अन्तःकरणादि वृत्तियोंके कार्योंका निर्लिप्त साक्षी)ही होता है।

बिना मान रह सकहि न द्वैता। द्वैतरहित अनुभव अद्वैता॥
क्लेश विकार गुणादि समस्ता। होते अद्वय के नित ध्वस्ता॥

इस प्रकार, विचारके द्वारा, मानमात्रका ही निषेध हो गया, तो द्वैत फिर रहेगा ही कहाँ? उसका तो आधार ही नष्ट हो गया। अतः द्वैतरहित जो आत्मानुभव होता है, वही अद्वैत होता है (जिसमें परस्परताकी अवधारणाका ही समूल विनाश हो जानेसे कामाकर्षणकी कोई सम्भावना ही नहीं बचती।) रागद्वेषादि समस्त क्लेश, काम-क्रोधादि विकार एवं सत्-रजादि त्रिगुण कभी भी अद्वैतमें अस्तित्वमान हो ही नहीं सकते, जीवनलाभ कर ही नहीं सकते, ध्वस्त ही रहते हैं।

ब्रह्मचर्य परिपूर्ण अखंडा। बिनु अद्वैत न सधहिं प्रचण्डा॥
जब अद्वैत सधे सुन ताता। ब्रह्मचर्य तब ही सध पाता॥

यह प्रचण्ड, परिपूर्ण एवं अखण्डित ब्रह्मचर्य केवल और केवल अद्वैतके विचारको आत्मसात् कर लेनेके उपरान्त ही सध सकता है, अन्य किसी तरहसे नहीं। दूसरे शब्दोंमें, बिना अद्वैतसिद्धिके ब्रह्मचर्य सध ही नहीं सकता।

बरु जल बिनु रस पावहिं कोई। भू बिन गन्ध गहे बरु कोई॥
अग्नि तत्त्व बिनु ताप प्रकाशा। हो नभ बिनु चाहे अवकाशा॥
बरु गति स्पर्श वात बिनु ताता। मौन सिद्ध सह हो कोई बाता॥
चले नाँव बिनु जल के चाहे। बिना प्राण हो जीवन चाहे॥
अनहोनी होनी बरु होवे। रवि शशि बिनु औषध वर होवे॥

चाहे जलके बिना किसीको रसकी प्राप्ति हो जाय, पृथ्वीके बिना किसीको गन्ध प्राप्त हो जाय, अग्निके बिना ही चाहे किसीको ताप एवं प्रकाशकी उपलब्धि हो जाय, आकाशके बिना चाहे किसीको अवकाश मिल जाय, मौन धारण किये-किये ही चाहे कोई बातचीत कर ले, जलके बिना ही चाहे नाव चल जाय, प्राणोंके बिना ही चाहे जीवन चलता रहे, असम्भव चाहे सम्भव हो जाय, चन्द्रमाके बिना ही चाहे ओषधियाँ जीवित रह जायँ।

किन्तु पूर्ण अद्वैत की सिद्धि न जब तक होय।
ब्रह्मचर्य तब तक किमपि तात! अखण्ड न होय॥

किंतु जब तक अद्वैतकी पूर्ण सिद्धि नहीं हो जाती, अद्वैतकी अवधारणा एवं विचार जबतक पूर्णतः आत्मसात् नहीं हो जाते, तबतक ब्रह्मचर्य किसी भी प्रकारसे अखण्डित नहीं हो सकता।

ब्रह्मचर्य रूढ़ार्थ में जग में है विख्यात।
योग भक्ति ओषधि समा साधन हैं कुछ तात!॥

ब्रह्मचर्यको जिस रूढ अर्थमें संसारियोंद्वारा समझा जाता है, वह तो प्रसिद्ध है ही। उस रूढ़ अर्थवाले ब्रह्मचर्यको साधनेके लिए कुछ शास्त्रीय साधन हैं, जैसे कि भगवान्की भक्ति तथा चित्तवृत्तियोंको अष्टांगयोगद्वारा निरुद्ध करना।

ब्रह्मचर्य का सूक्ष्मतः यह संक्षिप्त सुसार।
साधुन्ह को हो ग्राह्य यह करे उन्हें भव पार॥

यह आकांक्षा है, शुभेच्छा है कि ब्रह्मचर्यका यह सूक्ष्म सारसर्वस्व साधकगणको ठीकसे ग्रहण हो जाय, समझमें आ जाय, आत्मसात् हो जाय तथा उन्हें भव-सागरके पार लगानेवाला सिद्ध हो।

[सम्पर्क-सूत्र—०७६७८६३८४१९]

गोमूत्रके चमत्कार

१. कब्जकी रामबाण औषधि—गोमूत्र

मैं लगभग १५-१६ वर्षोंसे कब्जरोगसे बुरी तरह पीड़ित था, बिना दवाके एक दिन भी शौच नहीं होता था। इसके लिये मैंने अनेक डॉक्टरोंसे चिकित्सा करायी, लेकिन कोई विशेष फायदा नहीं हुआ। भोजनसे जरूरी मेरी दवा थी, जिसमें प्रति-माह हजारों रुपये लग जाते थे, फिर भी पेट साफ नहीं होता था।

सन् १९९३ के जनवरी माहके आस-पास मुझे बुखार हुआ, लेकिन उस बुखारसे मैं पूरे एक वर्षतक परेशान रहा। पहले सिरदर्द होता, फिर उलटी होती और फिर बुखार हो आता। बनारसमें रेलवेके एक डॉक्टरकी दवाका एक वर्ष सेवन किया। दवाके सेवनतक तो ठीक रहा, किंतु दवा बन्द करते ही १९९५ में फिर वही हाल होने लगा, तब मैं पुनः रेलवेके उसी डॉक्टरके पास गया एवं दवा लेकर 'गीताप्रेस' की दुकानमें गया। वहाँ अपनी पसन्दकी कुछ पुस्तकें लीं, उसी समय मेरी दृष्टि 'कल्याण' के 'गोसेवा-अंक' पर पड़ी तो मैंने उसे भी खरीद लिया और घर चला आया।

उसी 'गोसेवा-अंक' में गोमूत्रसे अनेक रोगोंकी चिकित्सा वर्णित थी। पढ़कर तदनुसार मैं भी गोमूत्रका सेवन सुबह मुँह धोकर खाली पेट करने लगा किंतु बहुत ही आश्चर्य हुआ कि दो-तीन दिनमें ही मेरे सभी रोग—कब्ज, सिरदर्द, उलटी, बुखार खत्म हो गये एवं मैंने सभी अंग्रेजी दवाइयोंका सेवन बन्द कर दिया। जबकि मैं एक दिन भी बिना दवाके नहीं रह सकता था। विगत १५ वर्षोंमें मैंने लगभग ८०-९० हजार रुपयेसे ज्यादा सिर्फ दवा आदिमें ही खर्च कर दिये थे। मेरा एक रुपया भी दवामें खर्च नहीं हुआ। मैं तो कभी-कभी जीना भी नहीं चाहता था। रोगोंकी पेरशानीसे मैंने तो यह सोचा भी नहीं था कि मेरे जीते-जी रोग ठीक होंगे, किंतु यह सब गोमूत्रका ही चमत्कार है, जो अब मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ।—अरुणकुमार गुप्ता

२. गोमूत्रके प्रयोगसे गठिया वात दूर हो गया

सन् १९९२ ई० से मैं गठिया रोगसे पीड़ित था। गठिया इस स्तरतक पहुँच गया कि मेरे दोनों घुटनोंमें असहनीय पीड़ा होती थी। ज्वर भी हो आता था। धीरे-धीरे मेरे दोनों घुटने आपसमें जुड़ने-से लगे और मैं बेकार हो गया। इस बीच ऐलोपैथिक और होमियोपैथिक दवाएँ भी काफी हुईं, पर बीमारी लाइलाज रही। मेरे रिश्तेदार मुझे ज्यादा-से-ज्यादा बैठे रहनेकी सलाह देते और कहते—पाँवका तो इलाज मुश्किल है, पर अगर तुम बैठने और हाथसे लिखते रहनेका अभ्यास रखोगे तो बैठे-बैठे कुछ काम कर सकते हो, जिससे तुम्हारा मन कुछ समय काममें लगा रहेगा और बीमारीसे भी हटेगा।

मैं पलंगसे अपने पाँवको हाथ और पीठके बलसे खींचकर कुर्सीपर बैठनेका अभ्यास करता। कभी कुछ लिखता, कभी कुछ आध्यात्मिक पुस्तकें पढ़ता। चार-पाँच घंटे बैठनेके बाद पीठमें बहुत पीड़ा होती, दूसरी तरफ पाँवकी भी पीड़ा बहुत सताती। तब मैं मन-ही-मन भगवान्‌से कहता कि 'हे भगवान्! मैं अपने कर्ममें जो लिखाकर लाया हूँ, वह तो मुझे अवश्य भोगना पड़ेगा, पर अगर आप चाहें तो दर्दमें कुछ राहत दिला दें, ताकि मैं अपना काम तो शान्तिसे करता रहूँ।'

मेरी करुणाभरी प्रार्थना भगवान्‌ने सुन ली। सन् १९९५ ई०में 'कल्याण' के विशेषांकके रूपमें 'गोसेवा-अंक' छपा, उसे देखकर-पढ़कर मुझे यह लगा कि यह तो मेरे लिये ही निकला है। उसमें गोमूत्र-महौषधिका एक लेख था और उस लेखमें वात-व्याधिके दो नुस्खे बताये गये थे। जिसमेंसे मैंने बड़े विश्वाससे एक नुस्खेका प्रयोग किया और इससे मुझे बड़ा लाभ हुआ। नुस्खे थे—(१) गोमूत्रका सेवन एरण्ड-तेलके साथ करनेपर कोई भी वात-व्याधि हो वह जड़से नष्ट हो जाती है। (२) गोमूत्रके साथ महारास्नादि क्वाथ लेनेसे संधिवातमें लाभ होता है।

मैं तीन महीने नियमसे आधा कप गोमूत्र और दो चम्मच क्वाथ लेता रहा। साथ ही, गोमूत्रसे पूरे शरीरकी मालिश और गर्म गोमूत्रका सेंक जोड़में करता था। गोमूत्रसे मेरे जोड़ोंपर चींटी चलने-जैसा अनुभव होने लगा और धीरे-धीरे मैं पूर्ण स्वस्थताकी ओर बढ़ने लगा। इस तरह मेरे दर्दमें ८५ प्रतिशत लाभ हुआ। यह ध्यानमें रखना चाहिये कि गोमूत्रके सेवनके साथ सात्त्विक भोजन ही किया जाय। अधिक मिर्च-मसाला, खटाई, तली-भुनी चीजोंका सेवन नहीं करना चाहिये। मेरा तो यही परामर्श है कि अगर किसीको शरीरके किसी भागमें दर्द हो तो उसे गोमूत्रका सेवन अवश्य करना चाहिये।—राकेश मालपानी

साधनोपयोगी पत्र

(१)

घरमें रहकर भजन कीजिये

प्रिय महोदय! सादर हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। आप भगवत्साक्षात्कारके लिये क्या त्याग करना चाहते हैं—यह आपने नहीं लिखा। यदि आप सच्चे संतोंका संग करेंगे और भगवद्‌भजन करना चाहेंगे तो आपका कोई विरोध नहीं करेगा। आरम्भमें कुछ विरोध हो सकता है; किंतु फिर सब शान्त हो जायँगे।

परंतु कई बार देखा गया है कि भजन और सत्संगके नामपर कोई-कोई नवयुवक क्षणिक आवेशमें आकर व्यर्थ अपने घरवालोंको तंग करते हैं, ऐसा नहीं होना चाहिये। यदि भजनकी सच्ची लगन है तो उसे दबाने की जरूरत नहीं है। भजन करते हुए घरवालों की यथेष्ट सेवा कीजिये। उनके प्रति भी आपका कर्तव्य है तथा उनकी सेवा भी श्रीभगवान्‌की ही सेवा है। ऐसे भावसे जो भजन एवं सेवा करते हैं, वे अपना और घरवालोंका, दोनोंका कल्याण कर सकते हैं। शेष भगवत्कृपा।

(२)

काम नरकका द्वार है

सप्रेम हरिस्मरण। कृपापत्र मिला। धन्यवाद! आपके प्रश्नोंपर मेरा अपना विचार इस प्रकार है—

'मायाबस परिच्छिन्न जड़ जीव कि ईस समान'

में 'जड़' शब्द अज्ञानीका वाचक है। अज्ञानी जीव ही अपने स्वरूपको भूल जानेके कारण अपनेको मायाके अधीन और परिच्छिन्न मानता है। प्रभुकी कृपासे उनका साक्षात् कर लेनेके बाद अज्ञान नहीं रहता। फिर मायाकी अधीनता और परिच्छिन्नताका भ्रम भी नहीं होता। यही जीवका शुद्ध रूप है। वह अपनेको भगवान्‌का किंकर मानता है और सब कुछ भगवत्स्वरूप समझता है। उसके और भगवान्‌के बीच फिर कोई दूसरी वस्तु नहीं आती। वह भगवान्‌की सेवाका सुख उठानेके लिये ही अपनेको उनसे पृथक् रखता है। वस्तुतः तो वह भी भगवत्स्वरूप ही है। इस प्रकार शुद्ध रूपमें आया हुआ जीव भगवान्‌के सदृश ही नहीं, उनसे अभिन्न है। फिर तो वह 'जीव' नहीं, विशुद्ध आत्मा अथवा भगवान्‌का किंकर है। ***'चेतन अमल सहज सुखरासी'*** है। जबतक वह मायाके अधीन होकर भूला-भटका फिरता है, तभीतक प्रभुसे दूर या विलग-सा हो रहा है। इस भ्रम या अज्ञानको दूर करनेका उपाय है अनन्य भक्तिके द्वारा प्रभुका साक्षात्कार अथवा विवेकनिष्ठाके द्वारा तत्त्वज्ञानकी उपलब्धि। प्रभु-भजन ही सुगम और अमोघ उपाय है, उससे तत्त्वज्ञान भी प्राप्त होता है; अतः प्रभुकी निरन्तर भक्तिद्वारा उनके साक्षात्कारका यत्न प्रत्येक जीवको करना चाहिये।

(२) ईश्वरको **'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थः'** कहा गया है। वे करने, न करने अथवा अन्यथा करने (विधानको पलट देने)-में भी समर्थ हैं। सारांश यह है कि भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं। आपकी शंका है—'क्या वह बीते हुए समय (भूतकाल)-को लौटा सकता है?' उत्तरमें निवेदन है, 'हाँ'। भूत, वर्तमान और भविष्यका भेद उन्हीं लोगोंके लिये है, जिनका जीवन एक नियत समयतकके लिये है। नित्य सनातन परमात्माकी दृष्टिमें न भूत है, न भविष्य। उनके लिये सब कुछ वर्तमान है। वे स्वयं ही काल हैं, उन्हींके गर्भमें यह सारा प्रपंच चल रहा है। आपने पुराणोंमें पढ़ा होगा, जब सारे जगत्‌का प्रलय हो गया था; सब कुछ एकार्णवमें डूब चुका था, उस समय भी बालरूपधारी मुकुन्दके मुखमें प्रवेश करके महर्षि मार्कण्डेयने तीनों लोकोंका पूर्ववत् दर्शन किया था। एक ही व्यक्तिने एक ही समय प्रलय और सृष्टि दोनोंका दृश्य देखा था। वास्तवमें हम सूर्यके उदय-अस्तद्वारा कालकी गणना करके भूत, भविष्य, वर्तमानका विभाग करते हैं; परंतु काल तो नित्य शाश्वत है, वह तो उस समय भी रहता है, जब सूर्य-चन्द्रका पता भी नहीं चलता। कालके ही उदरमें सूर्य-चन्द्रमाकी सृष्टि होती है। **'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।'** हम कालका आरम्भ कल्प अथवा सृष्टिके आरम्भसे मानते हैं; परंतु उस महाकालके जठरमें न जाने कितने करोड़ों बार सृष्टि और प्रलयकी लीला हो चुकी है। अतः नित्य कालकी दृष्टिसे भूत-भविष्य मिथ्या हैं;

वर्तमान ही सत्य है; ऐसी दशामें जिसे हम अतीत या भूत कहते हैं, वह प्रभुके स्वरूपमें वर्तमान ही हो तो क्या आश्चर्य है?

(३) आपकी जीवन-गाथा पढ़ी। पढ़कर खेद हुआ। आप उच्च कुलमें उत्पन्न हुए हैं। आपके घरमें धर्माचरणका वातावरण है। सब लोग उच्च विचारके और सच्चरित्र हैं। आपलोगोंके यहाँ साधु पुरुष भी आते-जाते हैं, तब भी आपके हृदयमें इतना भयंकर मोह अभीतक कैसे बना हुआ है? भाई! भोगोंकी तृष्णाका कभी अन्त नहीं होता है। आपने मनोनुकूल पत्नीकी सार्थकता इसीमें समझी है कि भोगोंकी अबूझ पिपासाको शान्त करनेका अबाध अवसर प्राप्त हो। राजा ययातिके सोलह हजार दो स्त्रियाँ थीं। अपनी सोलह हजार सुन्दरी सखियोंके साथ शर्मिष्ठा उनके अन्तःपुरमें रहती थीं और अप्रतिम रूपवती देवयानी उनकी महारानी थीं। फिर भी हजारों वर्षोंतक विषयसेवनके बाद भी उनकी तृष्णा शान्त नहीं हुई और वे दुखी होकर पुकार उठे—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
एकस्यापि न पर्याप्तं तदित्यतितृषां त्यजेत्॥
पूर्णं वर्षसहस्त्रं मे विषयासक्तचेतसः।
तथाप्यनुदिनं तृष्णा यत्तेष्वेव हि जायते॥

'भोगोंकी इच्छा कभी भोगसे नहीं शान्त हो सकती, जैसे घी डालनेसे आग और प्रज्वलित होती है, उसी प्रकार भोग भोगनेसे उसकी इच्छा और बढ़ती जाती है। इस संसारमें जितने धान, जौ, सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब एक मनुष्यके लिये भी पूर्ण नहीं हैं; अर्थात् ये सब एक पुरुषको ही दे दिये जायँ तो भी वह यह नहीं कह सकता कि 'बस, अब पूरा हो गया, और कुछ नहीं चाहिये।' विषयोंमें मनको फँसाये हुए मुझे एक हजार वर्ष पूरे हो गये, तो भी प्रतिदिन उन्हींकी लालसा बनी रहती है।'

गीतामें 'काम' को 'दुष्पूर अनल' कहा है अर्थात् काम वह अग्नि है, जिसमें विषयोंकी कितनी ही आहुति पड़े, वह कभी तृप्त नहीं होता। उसका कभी पेट नहीं भरता। इसीलिये वह 'महाशन' भी कहा गया है। इसके लिये गीताका स्पष्ट आदेश है—'इस कामरूपी दुर्धर्ष शत्रुको मार डालो।'

जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्॥

नरकके तीन दरवाजोंमें काम सबसे प्रमुख है। आपकी पत्नी देहातकी सीधी-साधी महिला हैं, इसे आप अपना सौभाग्य समझें। यदि सतीत्वको कुसंस्कार माननेवाली कोई स्वेच्छाचारिणी आपको मिल गयी होती तो वह आपके पहले ही आपके पथका अनुसरण करती! यदि आप एक निरपराध पत्नीके रहते हुए दूसरीका चुनाव करने चलते तो वह बहू भी शायद दूसरा पुरुष चुननेमें तनिक भी संकोच नहीं करती। उस समय आपके हृदयमें जो आग जलती, उसे बुझानेकी आपमें शक्ति नहीं रह जाती। अबतक पत्नीने आपकी इन दुष्प्रवृत्तियोंको जानकर भी विरोध नहीं किया; यह भारतीय सतीकी सहज उदारता है। वह उपेक्षा और तिरस्कारको चुपचाप पी जाती है; परंतु पतिको दुःख न हो, इसके लिये 'उफ्' भी नहीं करती। इन सतियोंके इस त्याग और बलिदानका आप-जैसे पुरुष अनुचित लाभ उठाने लगे हैं। इसीलिये अब नारियोंमें भी इसकी प्रतिक्रिया होने लगी है और इस प्रकार हमारा समाज रसातलकी ओर गिरता चला जा रहा है!

आप विवेकशील हैं, ईश्वरके समान बननेकी इच्छा रखनेवाले शुद्ध चेतन सहज सुखराशि आत्मा हैं; फिर जड़ हाड़-मांसकी पुतलीपर पागल होकर अपना सर्वनाश क्यों कर रहे हैं? मनुजी कहते हैं—'मनुष्यकी आयुको नष्ट करनेवाला पाप परस्त्री-सेवनसे बढ़कर दूसरा नहीं है।' अबसे भी आप अपने पूर्वजोंकी, अपने कुलकी मान-मर्यादाको ध्यानमें रखकर आत्मोत्थानके पथमें लगें। विषयके कीट बनकर नरकमें पहुँचनेके लिये सुरंग न खोदें। मेरा तथा समस्त शास्त्रोंका मत यही है कि इस पाप-पथपर आप पैर न रखें। सत्संग करें। सत्पुरुषोंकी जीवनी पढ़ें। माता दुर्गा आपकी इष्टदेवी हैं, उनसे रोकर प्रार्थना करें—'माँ! मुझे बल दो, मैं तुम्हारा योग्य पुत्र बन सकूँ। सदा सर्वत्र समस्त स्त्रियोंमें केवल तुम्हारे मातृरूपके ही दर्शन करूँ।' माता आपका मंगल करेंगी। शेष प्रभुकृपा!

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७४, शक १९३९, सन् २०१८, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-वसन्त-ऋतु, चैत्र कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ४। ३४ बजेतक	शुक्र	पू०फा० रात्रिमें १०। ३० बजेतक	२ मार्च	सर्वत्र होली (वसन्तोत्सव), कन्याराशि रात्रिमें ४। २१ बजेसे।
द्वितीया ,, ३। २७ बजेतक	शनि	उ०फा० ,, ९। ५६ बजेतक	३ ,,	× × ×
तृतीया ,, २। ४७ बजेतक	रवि	हस्त ,, ९। ४८ बजेतक	४ ,,	भद्रा दिनमें ३। ६ बजेसे रात्रिमें २। ४७ बजेतक, पू० भा० का सूर्य रात्रिमें २। १९ बजे।
चतुर्थी ,, २। ३५ बजेतक	सोम	चित्रा ,, १०। ९ बजेतक	५ ,,	तुलाराशि दिनमें ९। ५८ बजेसे, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ९। २३ बजे।
पंचमी ,, २। ५५ बजेतक	मंगल	स्वाती ,, ११। ० बजेतक	६ ,,	रंगपंचमी।
षष्ठी ,, ३। ४९ बजेतक	बुध	विशाखा ,, १२। २६ बजेतक	७ ,,	भद्रा रात्रिमें ३। ४९ बजेसे, वृश्चिकराशि सायं ६। ४ बजेसे।
सप्तमी रात्रिशेष ५। ८ बजेतक	गुरु	अनुराधा ,, २। १२ बजेतक	८ ,,	भद्रा सायं ४। २८ बजेतक, मूल रात्रिमें २। १२ बजेसे।
अष्टमी अहोरात्र	शुक्र	ज्येष्ठा रात्रिमें ४। २५ बजेतक	९ ,,	धनुराशि रात्रिमें ४। २५ बजेसे, श्रीशीतलाष्टमीव्रत।
अष्टमी प्रातः ६। ५० बजेतक	शनि	मूल अहोरात्र	१० ,,	× × ×
नवमी दिनमें ८। ५१ बजेतक	रवि	मूल प्रातः ६। ५३ बजेतक	११ ,,	भद्रा रात्रिमें ९। ५५ बजेसे, मूल प्रातः ६। ५३ बजेतक।
दशमी ,, १०। ५८ बजेतक	सोम	पू० षा० दिनमें ९। ३० बजेतक	१२ ,,	भद्रा दिनमें १०। ५८ बजेतक, मकरराशि सायं ४। ९ बजेसे।
एकादशी ,, १। ३ बजेतक	मंगल	उ० षा० ,, १२। ४ बजेतक	१३ ,,	पापमोचनी एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी ,, २। ५४ बजेतक	बुध	श्रवण ,, २। २६ बजेतक	१४ ,,	कुम्भराशि रात्रिमें ३। २९ बजेसे, प्रदोषव्रत, मीन-संक्रान्ति रात्रिमें १। ५८ बजे, पंचकारम्भ रात्रिमें ३। २९ बजे, वसन्तऋतु प्रारम्भ, खरमासारम्भ।
त्रयोदशी सायं ४। २६ बजेतक	गुरु	धनिष्ठा सायं ४। ३१ बजेतक	१५ ,,	भद्रा सायं ४। २६ बजेसे रात्रिशेष ४। ५९ बजेतक।
चतुर्दशी ,, ५। ३० बजेतक	शुक्र	शतभिषा ,, ६। ७ बजेतक	१६ ,,	× × ×
अमावस्या ,, ६। ५ बजेतक	शनि	पू० भा० रात्रिमें ७। १६ बजेतक	१७ ,,	मीनराशि दिनमें १२। ५८ बजेसे, अमावस्या।

सं० २०७५, शक १९३९-१९४०, सन् २०१८, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, चैत्र शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा सायं ६। ८ बजेतक	रवि	उ०भा० रात्रिमें ७। ५४ बजेतक	१८ मार्च	नवरात्रारम्भ 'विरोधकृत' संवत्सर, मूल रात्रिमें ७। ५४ बजेसे उ० भा० का सूर्य दिनमें १०। ९ बजे।
द्वितीया ,, ५। ४४ बजेतक	सोम	रेवती ,, ८। ४ बजेतक	१९ ,,	मेषराशि रात्रिमें ८। ४ बजेसे, पंचक समाप्त रात्रिमें ८। ४ बजे।
तृतीया ,, ४। ४४ बजेतक	मंगल	अश्विनी ,, ७। ४५ बजेतक	२० ,,	मत्स्यावतार, भद्रा रात्रिमें ४। ३ बजेसे, गणगौरव्रत, मूल रात्रिमें ७। ४५ बजेतक।
चतुर्थी दिनमें ३। २१ बजेतक	बुध	भरणी ,, ७। १ बजेतक	२१ ,,	भद्रा दिनमें ३। २१ बजेतक, वृषराशि रात्रिमें १२। ४६ बजेसे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, सायन मेषका सूर्य रात्रिमें १२। ९ बजे।
पंचमी ,, १। ३९ बजेतक	गुरु	कृत्तिका सायं ५। ५७ बजेतक	२२ ,,	शक संवत् १९४० प्रारम्भ।
षष्ठी ,, ११। ३९ बजेतक	शुक्र	रोहिणी ,, ४। ३८ बजेतक	२३ ,,	मिथुनराशि रात्रिमें ३। ५३ बजेसे, श्रीस्कन्दषष्ठी।
सप्तमी ,, ९। २६ बजेतक	शनि	मृगशिरा दिनमें ३। ६ बजेतक	२४ ,,	भद्रा दिनमें ९। २६ बजेसे रात्रिमें ८। १५ बजेतक, महानिशापूजा।
अष्टमी प्रातः ७। ४ बजेतक	रवि	आर्द्रा ,, १। २८ बजेतक	२५ ,,	श्रीदुर्गाष्टमीव्रत, श्रीरामनवमीव्रत।
दशमी रात्रिमें २। १६ बजेतक	सोम	पुनर्वसु ,, ११। ४७ बजेतक	२६ ,,	कर्कराशि प्रातः ६। १२ बजेसे।
एकादशी ,, १२। ० बजेतक	मंगल	पुष्य ,, १०। १० बजेतक	२७ ,,	भद्रा दिनमें १। ८ बजेसे रात्रिमें १२। ० बजेतक, कमदा एकादशीव्रत (सबका), मूल दिनमें १०। १० बजेसे।
द्वादशी ,, ९। ५३ बजेतक	बुध	आश्लेषा ,, ८। ४० बजेतक	२८ ,,	सिंहराशि दिनमें ८। ४१ बजेसे।
त्रयोदशी ,, ८। २ बजेतक	गुरु	मघा प्रातः ७। २३ बजेतक	२९ ,,	प्रदोषव्रत, मूल समाप्त प्रातः ७। २३ बजे।
चतुर्दशी सायं ६। ३१ बजेतक	शुक्र	पू०फा० ,, ६। २५ बजेतक	३० ,,	भद्रा सायं ६। ३१ बजेसे, कन्याराशि सायं ६। ६ बजेसे, व्रत-पूर्णिमा।
पूर्णिमा ,, ५। २४ बजेतक	शनि	हस्त रात्रिशेष ५। ३४ बजेतक	३१ ,,	भद्रा प्रातः ५। ५८ बजेतक, पूर्णिमा, श्रीहनुमज्जयन्ती, वैशाख स्नानारम्भ।

कृपानुभूति

माँ नर्मदाकी कृपा

हिन्दू धर्ममें यह मान्यता है कि नर्मदाजीके जलके केवल दर्शनमात्रसे श्रद्धालुओंके पाप नष्ट हो जाते हैं। मेरे पूज्य पितामह, पिता एवं माँ नर्मदाके प्रति अपार श्रद्धा रखते थे और उनके इच्छानुसार ही मरणोपरान्त उनकी अस्थियाँ मण्डला जाकर नर्मदाजीमें मेरे द्वारा प्रवाहित की गयी थीं।

सन् १९७५ ई० की बात है, मैं वन विभाग (म०प्र०)-में रेंजरके पदपर कार्यरत था। विभागद्वारा मुझे वर्ष १९७२ से १९७६ की अवधिमें सहायक वन अधिकारीके पदपर प्रतिनियुक्तिमें भेजा गया। उस समय मैंने बाँसकी तौलहेतु अपनायी गयी त्रुटिपूर्ण पद्धतिके सम्बन्धमें शासनको रिपोर्ट की थी, जिसमें गलत पद्धतिके कारण शासनको प्रतिवर्ष १४ लाख रुपयेकी रॉयल्टीकी हानि हो रही थी। मेरी इस कार्यवाहीसे तत्कालीन अधिकारी नाराज हो गये और मुझे कई प्रकारसे प्रताड़ित करने लगे। इसमें सबसे पहले मार्च १९७५ में बिना कारण बताये मुझे निलम्बित किया गया, जीवन-निर्वाह भत्तेकी कोई राशि नहीं दी गयी। मेरे विरुद्ध कई विभागीय तथा आपराधिक प्रकरण भी एक साथ प्रारम्भ किये गये। उसी समय जून, ७५ में आपातकालकी घोषणा केन्द्र सरकारद्वारा किये जानेसे शासकीय अधिकारियोंको असीमित अधिकार मिल गये थे, जिसका उपयोग करते हुए उन्होंने सी०बी०आई० बम्बईकी जाँच एजेन्सीको मेरे विरुद्ध प्रयुक्त किया। दिनांक २४ दिसम्बर १९७५ को मेरे निवास-गृह बालाघाट, कपुरधा एवं छिन्दवाड़ा इत्यादि कई स्थानोंमें एक साथ सी०बी०आई० द्वारा तलाशियाँ ली गयीं। मेरी आर्थिक स्थिति उस समय ऐसी थी कि परिवारके दो वक्तके भोजनकी भी समस्या थी। ऐसे कठिनाईके समयमें सगे-सम्बन्धियोंने भी साथ छोड़ दिया था। बालाघाटकी तलाशी कार्यवाही सी०बी०आई० के पुलिस अधिकारीने प्रात: ६ बजेसे सायं ५ बजेतक अपनी ४० सदस्यीय टीमके द्वारा की। मैं उस समय किसी कार्यसे रायपुर गया हुआ था। घरकी आर्थिक स्थिति उन्हें तलाशीके बाद स्पष्ट हो गयी। उन्होंने मेरी केस फाइलोंको पढ़कर यह पाया कि प्रार्थीने कोई अपराध नहीं किया है। उन्होंने मेरी पत्नीसे अपनी सान्त्वना केवल आँसुओंके द्वारा ही व्यक्त की और कहा कि ईमानदार लोग झुकते नहीं।

दूसरे दिन मेरे वापस आनेपर मुझे स्थितिकी जानकारी हुई। मैं अपने एक मित्र, जो मण्डला महाराजपुरके निवासी थे तथा रेंजरके पदपर कार्यरत थे, उनसे सहायता एवं परामर्शहेतु उनके घर गया। सुबहके तकरीबन ९ बजे थे, उस समय वे घरपर नहीं थे, सो मैं नर्मदाजीमें स्नानहेतु महाराजपुरके घाटपर चला गया। मुझे उस कठिनाईके समयमें किसी मार्गदर्शककी तलाश थी, इसीलिये मैं अपने मित्रके यहाँ गया था। पता नहीं मुझे ऐसा क्यों लग रहा था कि सब कुछ ठीक हो जायगा। ऐसा ही विचार करते-करते मेरे मनमें आया कि मैं आज २१ वर्षों बाद फिर अपनी माँ नर्मदाजीकी गोदमें हूँ, अब यही मेरी रक्षा करेंगी और ऐसा सोचते ही मैंने मन-ही-मन प्रार्थना की कि हे माँ! मुझे उचित मार्गदर्शन दीजिये।

इसके पश्चात् मैं स्नानकर अपने मित्रके घर पहुँचा। वहाँ उनकी पत्नीके आग्रहपर मैं भोजन करने बैठ गया। भोजन करते हुए मेरे अन्तर्मनमें नर्मदाजीका जल दिखायी दिया और उसमेंसे मुझे माँ नर्मदाका यह निर्देश सुनायी पड़ा कि सच्चे व्यक्तिको कभी डरना नहीं चाहिये। तुम्हें दूसरोंसे सहायता लेनेके बदले स्वयं ही इस सम्बन्धमें प्रयास करना चाहिये। मैंने पूछा मुझे क्या करना चाहिये? तो उत्तर मिला कि तुम्हें अपनी सी०बी०आई० तलाशीकी रिपोर्ट शासनको देनी चाहिये। मैंने पूछा कि इसपर क्या सहायता मिलेगी? तब मुझे उत्तर मिला कि अपने पत्रमें बाँसतौल-पद्धति बदलावका पूरा विवरण लिखकर भेजो, ताकि नाराजीके वास्तविक कारणका पर्दाफाश हो सके।

भोजनोपरान्त मैंने पत्र लिखना प्रारम्भ किया, मुझे लगा जैसे नर्मदाजी स्वयं अपनी प्रेरणासे मुझसे वह पत्र लिखवा रही हैं। पत्र दिनके दो बजेतक पूर्ण हो चुका था। इसके बाद मेरे मित्र आये, मैंने उनसे इस विषयमें चर्चा की और वापस बालाघाट पहुँचकर माँ नर्मदाद्वारा निर्देशित कार्यवाही की। अन्तमें मुझे पूर्णतया निर्दोष मानकर सहायक वन-संरक्षक एवं डी०एफ०ओ० पदपर मेरी पदोन्नति निर्धारित तिथियोंसे कर मुझे एरियर राशि १८ प्रतिशत ब्याजसहित भुगतान की गयी। इसे मैं माँ नर्मदाकी कृपा ही मानता हूँ।—रमेशचन्द्र तिवारी

पढ़ो, समझो और करो

(१)

धर्मकी कमाई खोकर भी वापस आ गयी

रातका समय था, मैं पी०सी०ओ० में बात करने जा रहा था। मेरी साइकिलपर एक बैग टँगा था, मैंने उसे खींचकर देखा कि इसके फीते मजबूत तो हैं। उसके बाद बाहर निकल पड़ा। पी०सी०ओ० में बात करके वापस घर आया। साइकिलसे बैग निकालना चाहा तो देखा बैग नहीं है, सन्न रह गया। भगवान् तथा शास्त्रोंपर मेरी बड़ी निष्ठा है। मैंने बरामदेकी दीवारपर एक बड़ा चित्र चिपकाया हुआ था—शेषनागकी शय्यापर भगवान् विष्णु शयन किये हुए हैं और लक्ष्मीमाता चरण दबा रही हैं। मेरा खून खौल उठा। मैंने भगवान्‌से कुछ देरतक झगड़ा किया और गुस्सेमें कहा कि आप तो जानते ही हैं कि मैं कोई भी काम गलत नहीं करता तथा न गलत तरीकेसे धन-उपार्जन ही करता हूँ। धर्मपूर्वक अपना जीवन-निर्वाह करता हूँ। फिर भी मेरा बैग क्यों गुम हो गया? शास्त्रमें आपका ही कथन है कि धर्मपूर्वक निर्वाह करनेवालेकी धन-सम्पत्ति न तो खोती है न चोरी होती है। फिर मेरे साथ ऐसा क्यों हुआ? मैं कुछ नहीं जानता, आपको एक घण्टेका समय देता हूँ। एक घण्टा मैं घरपर रहूँगा, मेरा बैग मेरे पास घरपर ही आ जाना चाहिये। यदि नहीं आया तो—हे भगवन्! तू झूठा, तेरा शास्त्र झूठा।

करीब पौन घण्टे बाद मेरे एक परिचित श्रीअजय अग्रवाल हमारे घरपर आये और मुझसे पूछा भाईजी! आप बाहर कहीं गये थे? आपका कोई सामान खो गया है क्या? मैंने कहा—हाँ, मेरा बैग खो गया है। उसने बनियानके अन्दरसे बैग निकालकर मुझे देते हुए कहा—होमियोपैथिक डॉक्टर हाबू दाके यहाँ एक बच्चा इसे लेकर आया और बोला—डॉक्टर साहब! बाहर यह बैग मिला है, लीजिये। बैगके अन्दर डायरीमें आपका नाम देखकर डॉक्टर साहब बोले, इनको तो मैं जानता हूँ। मैंने कहा—डॉक्टर साहब! मैं उन्हींके घर जानेवाला हूँ; आप चाहें तो मुझे दे सकते हैं। मैंने बैग खोलकर देखा—सब ठीक-ठाक है, पर चश्मेके दोनों शीशे निकले हुए थे। मनमें विचार आया इसे लगानेके तो रुपये लगेंगे! मगर हिसाबसे तो नहीं लगने चाहिये। देखें क्या होता है? सुबह चश्मेकी दूकानपर गया, दूकानदार भगवान्‌को अगरबत्ती कर रहा था। अन्दर बुलाये, चश्मेमें काँच लगाये। मैंने पूछा कितने पैसे दूँ? बोला कुछ नहीं देना है। मुझे ऐसे लगा भगवान् मेरे पीछे खड़े हैं और देख रहे हैं—मुझसे तो झगड़ा करके घर बैठे ही बैग मँगवा लिया, अब देखें खुद क्या करता है। मैं दुविधामें पड़ गया, समझमें नहीं आ रहा था, क्या करूँ? चश्मा कवरमें रख रहा था—कपड़ेका कवर था, कई जगहसे फटा था—मैंने पूछा, चश्मेका कवर है? बोला 'है'। मैंने कहा दीजिये। दस रुपये बताये—लेकर घरपर आ गया और आकर भगवान्‌को प्रणाम किया और कहा—हे नाथ! मैंने आपको बहुत ही बुरा-भला कहा, हे प्रभु! मुझे क्षमा करें।—जगदीश प्रसाद शर्मा (पारीक)

(२)

मेरी जिन्दगी महक उठी

मैं हूँ मिलड्रेड हाँडॉर्फ, प्राथमिक विद्यालयमें संगीतका अध्यापक। तीस सालोंसे मैं बच्चोंको पिआनो सिखा रहा हूँ। मेरे हाथसे कई होनहार बच्चे गुजरे, जिन्होंने आगे चलकर संगीतमें खूब नाम कमाया, लेकिन मैं हमेशा सपने देखा करता था कि कोई ऐसा 'एकमेवाद्वितीयम्' विद्यार्थी मेरी झोलीमें प्रभु डाल दें, जिससे मेरा भी नाम रोशन हो जाये!

प्रभुने कुछ किया भी ऐसा ही, सचमुच किया क्या?··· उन्होंने किया यह कि मेरे पल्ले एक ऐसा विद्यार्थी बाँध दिया, जिसे संगीतका ककहरा सिखाना भी मेरे लिए एक पहेली बन रहा था।

वह था ११ सालका रॉबी, जिसे पहले रोज उसकी माँ पिआनोकी कक्षामें छोड़ने आयीं। मेरे हिसाबसे पिआनो सीखना शुरू करनेके लिए उसकी उम्र निकल चुकी थी; जब मैंने इस बातकी भनक उसके कानमें डाली तो वह बोल उठा, 'सर, हमेशासे मेरी माँका यही सपना था कि वे मुझे पिआनो बजाते सुनें, जानता हूँ, उमर मेरी कुछ ज्यादा है, लेकिन मैं वादा करता हूँ कि जी-तोड़ मेहनत करूँगा, अपनी माँका दिल छोटा नहीं करूँगा,

नहीं करूँगा सर! आप ही मेरे मददगार बनिये कृपया।'

उसकी यह विनती मैं टाल न सका। लेकिन उसी रोज मैं समझ गया कि रॉबीको संगीत सिखाना शायद चुनौतीको चुनौती देना है! सच मानिये, मेरे अध्यापनके इतने लम्बे अरसेमें मेरा वास्ता संगीतके ऐसे विद्यार्थीसे कभी नहीं पड़ा, जिसके लिए संगीतकी दुनियामें पहला कदम रखना भी पहाड़ लाँघने-जैसा था। ईश्वरने उसके हाथोंमें न लयका दामन थमाया था, न तालका, इसलिये …फिर भी, रोज बिना नागा उसकी माँ उसे विद्यालयके फाटकतक पुरानी, खटारा गाड़ीमें छोड़ जाती।

रॉबी पिआनोपर रोज वही समान, सरल संगीतका अभ्यास करने लगा। उसके साथ आये दूसरे बच्चे तो आगे बढ़ गये, लेकिन वह पूरे-पूरे पन्द्रह दिन उसीमें लगा रहा, हर पखवाड़े अपने छात्रोंकी एक छोटी-सी परीक्षा लेनेका मेरा नियम है। कहना न होगा कि एकके सिवाय सभी उत्तीर्ण हो गये। मेरे माथेकी सिलवटें उसने फौरन पढ़ लीं; कुछ मायूस, लेकिन बड़े विश्वासके साथ वह मुझसे बोला—सर! मेरी माँ कभी मेरा पिआनो जरूर सुनेंगी। मैं उसकी बात पकड़ न पाया, लेकिन उसकी उस उमंगने मेरे दिलपर हाथ रख दिया और मैंने भी ठान लिया कि इस बच्चेको मैं कुछ सिखाकर ही छोड़ूँगा…।

क्या इतना सरल था रॉबीको कुछ भी सिखाना? एक रोज मैंने उसकी माँसे बात करनेकी भी सोची, लेकिन न जाने क्यों, हिम्मत ही न जुटा पाया। बेटेके साथ वे कभी कक्षातक आयीं ही नहीं! रॉबीको छोड़ते और लेते वक्त हमेशा मैंने उन्हें गाड़ीमें बैठे इन्तजार करते ही देखा। रोज मुझे वे दूरसे ही देखकर मुसकुरातीं, फिर हाथ हिलाकर अपनी पुरानी-धुरानी गाड़ी आगे बढ़ा देतीं। इनकी माली हालत खस्ता है, फिर भी अपने बेटेको संगीतकार बनाना चाहती हैं, सोच-सोचकर मैं कभी भी बढ़कर उनके बेटेकी अयोग्यताका जिक्र उनसे न कर पाया…।

और एक दिन रॉबीने कक्षामें आना बन्द कर दिया। एक दफा मेरे मनमें ख्याल आया कि फोन करके पूछ लूँ, लेकिन फिर सोचा कि हो न हो, संगीतकी दुनियासे उसका दूर-दूरका वास्ता नहीं है, समझकर ही रॉबीने कक्षा छोड़ दी हो। दिलके किसी कोनेमें मैं उसके न आनेसे खुश भी हो रहा था—मैं अपनी अयोग्यताका झण्डा नहीं फहराना चाहता था, यानी, रॉबीको किसी लायक न बना पाना मेरी ही हार होती…।

दो महीने गुजर गये, शुरू-शुरूमें कभी-कभार रॉबीको मैंने याद भी किया, लेकिन फिर वह दिमागसे एकदम उतर गया। अब मेरे छात्र अपना पहला कार्यक्रम प्रस्तुत करनेको तैयार थे; मैंने हर एकके घरपर कार्यक्रमका परचा भिजवानेकी सूचना दफ्तरमें दे दी। लौटती डाकसे रॉबीकी चिट्ठी आयी कि वह भी कार्यक्रमका हिस्सा बनना चाहता है। मैंने उसे लिखा कि कार्यक्रममें वर्तमान छात्र ही भाग ले रहे हैं, और चूँकि वह दो महीनोंसे नहीं आया, इसलिए वह योग्य नहीं ठहर सकता। इस बार उसका फोन आया। उसकी बेबसीसे मैं पसीजने लगा, जब उसने बताया कि उसकी माँ बहुत बीमार थीं, और चूँकि घरपर उन दोनोंके सिवाय और कोई नहीं है, इसलिए वह आनेसे एकदम मजबूर था, साथ ही उसने कहा—सर, यकीन मानिये; मैं रोज, हर रोज बगलके घरमें जाकर पिआनोका अभ्यास करता हूँ। बड़े भले हैं वे लोग, कभी-कभी मेरी मदद भी कर दिया करते हैं, अब हाथ भी मेरे कुछ सध गये हैं। मैं सकतेमें आ गया। यकायक मुँहसे निकल पड़ा, अभ्यास! मैं आगे कहना चाहता था कि दूसरी तरफसे रुआँसी, गिड़गिड़ाती आवाज आयी—सर, सर! इस कार्यक्रममें मुझे बजानेकी अनुमति दे दें, हाथ जोड़ता हूँ आपके। मेरा इसमें बजाना बहुत, बहुत जरूरी है। अब तो मैं बड़े पसोपेशमें पड़ गया, फिर भी कहना चाहता था कि नहीं, यह मुमकिन नहीं होगा रॉबी, अगली बार हम कोशिश कर सकते हैं, की बजाय न जाने कैसे मैंने अपने-आपको कहते सुना—ठीक है, कोशिश कर सकते हैं। दूसरी तरफसे आती हुई 'शुक्रिया-शुक्रिया' की बौछारसे मैं जगा!

अब क्या करूँ! क्या करूँ…का हौआ मेरे पीछे पड़ गया। मन जब जरा शान्त हुआ तो उस बच्चेके लिये दयाका सोता फूट पड़ा—बेचारा, अकेली जान, माँ सख्त बीमार, तिसपर कह रहा है कि कहीं जरूर रोज अभ्यास भी करता रहा है! लेकिन…लेकिन… फिर वही दानव 'लेकिन' आ खड़ा होता। आखिर मैंने यह उपाय खोज निकाला कि चूँकि वह औरोंके साथ तो बजा नहीं सकता, इसलिये उसे एकदम अन्तमें बजानेके लिये

कहूँगा, मेरे धन्यवाद-ज्ञापनके ठीक पहले, ताकि अगर वह ज्यादा बेसुरा हुआ भी तो माइकपर उसके संगीतको धीमा करवाकर मैं अपना भाषण शुरू कर दूँगा। बस, यह बात मुझे पहलेसे ही अपने तकनीकी-दलको चुपचाप समझानी थी। मैंने रॉबीको यह सूचना भेज दी कि ज्यादा-से-ज्यादा डेढ़-दो मिनटका वह अपना एकल संगीत अन्तमें बजायेगा। एक बार फिर उसने मुझे धन्यवादसे सराबोर कर दिया। वह शाम आ गयी। विद्यालयका हॉल विद्यार्थियों, अध्यापकों, अभिभावकों, रिश्तेदारों, दोस्तों इत्यादिसे खचाखच भरा था।

परदा खुलनेके पहले मैंने सब छात्रोंपर निगाह डाली, हमने मिलकर छोटी-सी प्रार्थना की, रॉबी कहीं न दिखा। 'चलो, खुद ही नहीं आया' की सोचने मेरे दिलमें एक साथ खुशी और गमकी रेखाएँ खींच दीं।

छात्रोंके सम्मिलित संगीतके खत्म होते-न-होते स्टेजपर चढ़ता हुआ मुझे रॉबी दिखायी दिया··· हे भगवान्! कैसा हुलिया बनाकर आया है यह बच्चा? मुसे-तुसे कपड़े, बिखरे हुए बाल, चेहरेपर हवाइयाँ उड़ रही हैं। एकबारगी मुझे उसपर गुस्सा आया, लेकिन वह तो स्टेजपर आ चुका था। मैंने उसे घूरा जरूर, बदलेमें उसने चुपचाप झुककर मेरा अभिवादन किया, जनताका अभिवादन किया। और माइक देनेके लिए मेरी तरफ हाथ बढ़ाया। जब रॉबीने यह घोषणा की कि वह मोजारका Concerto # 21 C Major में बजायेगा तो सच कहूँ, मेरे तो रोंगटे खड़े हो गये। संगीतकी दुनियासे कुछ कम परिचित लोगोंके लिए यह समझना काफी है कि अच्छे-अच्छे पिआनोवादक भी संगीत-गोष्ठीमें इसे बजानेसे बेहद कतरायेंगे···और वह बित्ती-भरका बच्चा यह कैसी घोषणा कर बैठा? अब क्या किया जा सकता था भला? एकदम कुछ नहीं···

इसके बाद मैंने जो सुना, उसे सुननेके लिए मेरे कान बिलकुल तैयार नहीं थे। पिआनोपर फिसलती हुई उसकी उँगलियाँ, मानों बादलोंपर थिरकती कोई अप्सरा हो, गिरजाघरमें बजती घण्टियोंकी पवित्रता हो; उसका वह मध्यमसे सप्तकतक चढ़ना और फिर उतरना···मैंने अपनी इतनी लम्बी जिन्दगीमें इस उम्रके बच्चेको मोजारके संगीतको इस खूबीसे बजाते कभी, कहीं न सुना था।

साढ़े छह मिनटके बाद वे जादुई हाथ थमे। तालियोंकी गड़गड़ाहट भी शायद उतनी ही देर गूँजती रही। हॉलका हर एक व्यक्ति उसके सम्मानमें खड़ा, झुककर बार-बार उसका अभिवादन कर रहा था।

अपने आँसुओंकी परवाह किये बिना मैं स्टेजपर भागा, रॉबीको अपनी छातीमें भींचकर, आँसुओंका गुबार कम होनेतक चिपकाये ही रहा। बड़ी मुश्किलसे मैं बोल पाया—रॉबी मेरे बच्चे, कैसे किया तुमने यह जादू?

माइकपर उसकी आवाज गूँजी—'सर, याद है, मैंने आपसे कहा था कि मेरी माँ सख्त बीमार हैं? सचमुच उन्हें कैंसर था और आज सवेरे उनका देहान्त हो गया' ···पल-भरके लिए वह रुका, सारी जिन्दगी थम गयी ···मेरी तरफ मुँह उठाकर वह फिर बोला,··· 'जन्मसे ही वे बहरी थीं सर, तो आजकी रात पहली बार उन्होंने मुझे बजाते हुए सुना, भगवान्के पास पहुँचकर तो सभी बीमारियाँ खतम हो जाती हैं न सर···!'

अवाक् कर देनेवाली उसकी इस मासूम सच्चाईने सारे हॉलमें सूईटपक सन्नाटा (Pindrop Silence) बिछा दिया। एक जोड़ी आँखें भी रीती न रहीं। मेरी बाँहें उसे अपनेमें भरनेके लिए फिरसे लपकीं। इसबार उसने खुदको मेरी भुजाओंमें पूरी तरहसे समर्पित कर दिया। उस समर्पणकी आत्मीयतासे सराबोर मैंने अपने-आपसे पूछा—'किसने किसको प्रतिभाशाली बना दिया? आज यह मेरा खोया हुआ विद्यार्थी मेरे सामने खड़ा है या मेरे नूतन गुरुदेव?'

दूर-पासका रॉबीका न कोई सगा था, न हितचिन्तक। उसकी माँने वसीयतमें अपनी सारी गाढ़ी कमाई एक समाजिक संस्थाके नाम कर दी थी, साथ ही उस संस्थाके नाम विनती-भरी एक चिट्ठी छोड़ गयी थीं कि रॉबीके बालिग होनेतक कृपया वे ही उसकी देख-रेख कर लें।

उस सामाजिक संस्थासे रॉबीको हमेशाके लिये गोद ले लिया मैंने। आजतक अपने परम सौभाग्यको सराहता हुआ, सुबह-शाम मैं अपने प्रभुको धन्यवाद देना कभी नहीं भूलता, जिन्होंने अपनी परम कृपाके एक सुखद झोंकेसे मेरी सारी जिन्दगीको महका दिया।

['अग्निशिखा' से साभार, प्रेषक—श्री जे०पी० अग्रवालजी]

मनन करने योग्य

परस्त्रीमें आसक्ति मृत्युका कारण होती है

द्रौपदीके साथ पाण्डव वनवासके अन्तिम वर्ष 'अज्ञातवास'के समयमें वेष तथा नाम बदलकर राजा विराटके यहाँ रहते थे। उस समय द्रौपदीने अपना नाम सैरन्ध्री रख लिया था और विराटनरेशकी रानी सुदेष्णाकी दासी बनकर वे किसी प्रकार समय व्यतीत कर रही थीं।

राजा विराटका प्रधान सेनापति कीचक रानी सुदेष्णाका भाई था, एक तो वह राजाका साला था, दूसरे सेना उसके अधिकारमें थी, तीसरे वह स्वयं प्रख्यात बलवान् था और उसके समान ही बलवान् उसके एक सौ पाँच भाई उसका अनुगमन करते थे। इन सब कारणोंसे कीचक निरंकुश तथा मदान्ध हो गया था। वह सदा मनमानी करता था। राजा विराटका भी उसे कोई भय या संकोच नहीं था। उलटे राजा ही उससे दबे रहते थे और उसके अनुचित व्यवहारोंपर भी कुछ कहनेका साहस नहीं करते थे।

दुरात्मा कीचक अपनी बहन रानी सुदेष्णाके भवनमें एक बार किसी कार्यवश गया। वहाँ अपूर्व लावण्यवती दासी सैरन्ध्रीको देखकर उसपर आसक्त हो गया। कीचकने नाना प्रकारके प्रलोभन सैरन्ध्रीको दिये। सैरन्ध्रीने उसे समझाया—'मैं पतिव्रता हूँ। अपने पतियोंके अतिरिक्त किसी पुरुषकी कभी कामना नहीं करती। तुम अपना पापपूर्ण विचार त्याग दो।' लेकिन कामान्ध कीचकने उसकी बातोंपर ध्यान नहीं दिया। उसने अपनी बहिन सुदेष्णाको भी सहमत कर लिया कि वे सैरन्ध्रीको उसके भवनमें भेजेंगी। रानी सुदेष्णाने सैरन्ध्रीके अस्वीकार करनेपर भी अधिकार प्रकट करते हुए डाँटकर उसे कीचकके भवनमें जाकर वहाँसे अपने लिये कुछ सामग्री लानेको भेजा। सैरन्ध्री जब कीचकके भवनमें पहुँची, तब वह दुष्ट उसके साथ बलप्रयोग करनेपर उतारू हो गया। उसे धक्का देकर वह भागी और राजसभामें पहुँची। परंतु कीचकने वहाँ पहुँचकर राजा विराटके सामने ही केश पकड़कर उसे भूमिपर पटक दिया और पैरकी एक ठोकर लगा दी। राजा विराट कुछ भी बोलनेका साहस नहीं कर सके।

सैरन्ध्री बनी द्रौपदीने देख लिया कि इस दुरात्मासे विराट उनकी रक्षा नहीं कर सकते। कीचक और भी धृष्ट हो गया। अन्तमें व्याकुल होकर रात्रिमें द्रौपदी भीमसेनके पास गयी और रोकर उन्होंने भीमसेनसे अपनी व्यथा कही। भीमसेनने उन्हें आश्वासन दिया। दूसरे दिन सैरन्ध्रीने भीमसेनकी सलाहके अनुसार कीचकसे प्रसन्नतापूर्वक बातें कीं और रात्रिमें उसे नाट्यशालामें आनेको कह दिया।

राजा विराटकी नाट्यशाला अन्त:पुरकी कन्याओंके नृत्य एवं संगीत सीखनेके काम आती थी। वहाँ दिनमें कन्याएँ गान-विद्याका अभ्यास करती थीं, किन्तु रात्रिमें वह सूनी रहती थी। कन्याओंके विश्रामके लिये उसमें एक विशाल पलंग पड़ा था। रात्रिका अन्धकार हो जानेपर भीमसेन चुपचाप आकर नाट्यशालाके उस पलंगपर सो रहे। कामान्ध कीचक सज-धजकर वहाँ आया और अँधेरेमें पलंगपर बैठकर, भीमसेनको सैरन्ध्री समझकर उनके ऊपर उसने हाथ रखा। उछलकर भीमसेनने उसे नीचे पटक दिया और वे उस दुरात्माकी छातीपर चढ़ बैठे।

कीचक बहुत बलवान् था। भीमसेनसे वह भिड़ गया। दोनोंमें मल्लयुद्ध होने लगा; किंतु भीमने उसे शीघ्र पछाड़ दिया, उसका गला घोंटकर उसे मार डाला और फिर उसका मस्तक तथा हाथ-पैर इतने जोरसे दबा दिये कि वे सब धड़के भीतर घुस गये। कीचकका शरीर एक डरावना लोथड़ा बन गया।

प्रात:काल सैरन्ध्रीने ही लोगोंको दिखाया कि उसका अपमान करनेवाला कीचक किस दुर्दशाको प्राप्त हुआ है। परंतु कीचकके एक सौ पाँच भाइयोंने सैरन्ध्रीको पकड़कर बाँध लिया। वे उसे कीचकके शवके साथ चितामें जला देनेके उद्देश्यसे श्मशान ले चले। सैरन्ध्री क्रन्दन करती जा रही थी। उसका विलाप सुनकर भीमसेन नगरका परकोटा कूदकर श्मशान पहुँचे। उन्होंने एक वृक्ष उखाड़कर कन्धेपर उठा लिया और उसीसे कीचकके सभी भाइयोंको यमलोक भेज दिया। सैरन्ध्रीके बन्धन उन्होंने काट दिये।

अपनी कामासक्तिके कारण दुरात्मा कीचक मारा गया और पापी भाईका पक्ष लेनेके कारण उसके एक सौ पाँच भाई भी बुरी मौत मारे गये। [महाभारत, विराटपर्व]

श्रीमहाशिवरात्रिपर्वपर पाठ-पारायण एवं स्वाध्याय-हेतु प्रमुख प्रकाशन

संक्षिप्त शिवपुराण, सचित्र (मोटा टाइप) कोड 1468, विशिष्ट संस्करण, सजिल्द—इस पुराणमें परात्पर ब्रह्म श्रीशिवके कल्याणकारी स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, रहस्य, महिमा और उपासनाका विस्तृत वर्णन है। इसमें भगवान् शिवके उपासकोंके लिये यह पुराण संग्रह एवं स्वाध्यायका विषय है। मूल्य ₹२५०, सामान्य संस्करण (कोड 789) मूल्य ₹ २००, (कोड 1286) मूल्य ₹ २२५ गुजराती, (कोड 975) मूल्य ₹ २०० तेलुगु, (कोड 1937) बँगला मूल्य ₹ १६०, (कोड 1926) मूल्य ₹ १७५ कन्नड़, (कोड 2043) मूल्य ₹ ३०० तमिल भी।

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
2020	शिवमहापुराण-मूलमात्रम्	२७५	1156	एकादश रुद्र (शिव)-चित्रकथा	५०	228	शिवचालीसा-पॉकेट साइज	४
1985	लिङ्गमहापुराण-सटीक	२२०	204	ॐ नमः शिवाय ,,	२५	1185	शिवचालीसा-लघु	२
1417	शिवस्तोत्ररत्नाकर-सानुवाद	३५	1343	हर हर महादेव ,,	२५	1599	श्रीशिवसहस्र...नामावलि...	१०
1899	श्रावणमास-माहात्म्य ,,	३२	1367	श्रीसत्यनारायणव्रतकथा	१५	230	अमोघ शिवकवच	४
1954	शिव-स्मरण	१०	563	शिवमहिम्नःस्तोत्र	५	1627	रुद्राष्टाध्यायी-सानुवाद	३०

चैत्र नवरात्रके अवसरपर नित्य पाठके लिये 'श्रीरामचरितमानस' के विभिन्न संस्करण

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
1389	श्रीरामचरितमानस—बृहदाकार (वि०सं०)	६५०	82	श्रीरामचरितमानस—मझला साइज, सटीक, [बँगला, गुजराती भी]	१३०
80	,, बृहदाकार-सटीक (सामान्य संस्करण)	५५०			
1095	,, ग्रन्थाकार-सटीक (वि०सं०) गुजरातीमें भी	३३०	1318	,, रोमन एवं अंग्रेजी-अनुवादसहित (मझला भी)	३००
81	,, ग्रन्थाकार-सटीक, सचित्र, मोटा टाइप, [ओड़िआ, तेलुगु, मराठी, नेपाली गुजराती, कन्नड, अंग्रेजी भी]	२६०	83	,, मूलपाठ,ग्रन्थाकार [गुजराती, ओड़िआ भी]	१३०
			84	,, मूल, मझला साइज [गुजराती भी]	८०
1402	,, सटीक, ग्रन्थाकार (सामान्य संस्करण)	२००	85	,, मूल, गुटका [गुजराती भी]	५०
1563	,, मझला, सटीक (विशिष्ट संस्करण)	१५०	1544	,, मूल, गुटका (विशिष्ट संस्करण)	६०
1436	,, मूलपाठ, बृहदाकार	३००	1349	,, सुन्दरकाण्ड सटीक, मोटा टाइप [गुजराती भी]	२५

नित्य पाठके लिये 'श्रीदुर्गासप्तशती' के विभिन्न संस्करण

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
1567	श्रीदुर्गासप्तशती—मूल, मोटा टाइप (बेड़िआ)	५०	118	श्रीदुर्गासप्तशती—सानुवाद, सामान्य टाइप (गुजराती, बँगला, ओड़िआ भी)	३५
876	,, मूल, गुटका	१५			
1346	,, सानुवाद, मोटा टाइप	४०	866	,, केवल हिन्दी	२२
1281	,, सानुवाद (राजसंस्करण)	५५	1161	,, ,, मोटा टाइप, सजिल्द	५५
489	,, सजिल्द, गुजरातीमें भी	५०	1774	देवीस्तोत्ररत्नाकर	४०

नवीन प्रकाशन—अब उपलब्ध

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
2128	Sarala Gītā (with English Translation & Transliteration), कोड 2099 हिन्दीमें भी	35	2118	कौटुम्बिक संस्कार-कथा [मराठी]	२५
2098	हरिवंशपुराण ग्रन्थाकार [गुजराती]	३२५	2115	कथा तुमच्या-आमच्या [मराठी]	२५
2126	एक संतकी वसीयत [असमिया]	३	2108	अपिरामि अन्तादि [तमिल]	५
2113	श्रीब्रह्मचैतन्य गोंदवलेकर महाराज [मराठी]	३०	2116	श्रीकन्द षष्टि कवचम् [तमिल]	५

खुल गया है—भोपाल जं० प्लेटफार्म नं० १ (म०प्र०) रेलवे स्टेशनपर गीताप्रेस, गोरखपुरका पुस्तक-स्टॉल।

९५५४८५३०८९ T.B.Sethi
प्र० ति० २०-१-२०१८
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2017-2019
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2017-2019

'कल्याण'के पाठकोंसे नम्र निवेदन

फरवरी माह सन् २०१८ ई० का अङ्क आपके समक्ष है। यह अङ्क उन सभी ग्राहकोंको भी भेजा गया है, जिनको सन् २०१८ ई० का विशेषाङ्क '**श्रीशिवमहापुराणाङ्क**' वी०पी०पी० द्वारा भेजा गया है, लेकिन उसका भुगतान हमें प्राप्त नहीं हो पाया है। जिन ग्राहकोंकी वी०पी०पी० किसी कारणसे वापस हो गयी है, उनसे अनुरोध है कि सदस्यता-शुल्क मनीआर्डर/ड्राफ्टसे भेजकर रजिस्ट्रीसे पुनः मँगवानेकी कृपा करेंगे।

जिन ग्राहकोंको सदस्यता-शुल्क भेजनेके उपरान्त भी उनके रुपये यहाँ न पहुँचने अथवा उनके रुपयोंका यहाँ समायोजन आदि न हो सकनेके कारण वी०पी०पी०से अङ्क प्राप्त हो गया है, उनसे अनुरोध है कि वे किसी अन्य व्यक्तिको वह अङ्क देकर ग्राहक बना दें और उनका नाम, पूरा पता तथा अपनी ग्राहक-संख्या आदिके विवरणसहित हमें भेज दें, जिससे उन्हें नियमित ग्राहक बनाकर भविष्यमें 'कल्याण' सीधे उनके पतेपर भेजा जा सके। यदि नया ग्राहक बनाना सम्भव न हो तो पूर्व जमा रकमकी वापसी या समायोजन एवं वी०पी०पी०से पुनः अङ्क मँगवाने-हेतु e-mail : **kalyan@gitapress.org. / 09235400242/244** पर सम्पर्क करना चाहिए। इसके अतिरिक्त 9648916010 पर SMS एवं WatsApp की सुविधा भी उपलब्ध है।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ०प्र०)